Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

हिन्दुत्व की यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

168025

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुत्व की यात्रा

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्वदर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उसके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

परिषद् के प्रकाशन

दर्शन एवं विज्ञान

श्री गुरुदत्त

न्याय दर्शन (भाष्य)
ब्रह्मसूत्र सरल भाषा-भाष्य भाग-१
ब्रह्मसूत्र सरल भाषा-भाष्य भाग-२
मुण्डक—माण्डूक्य उपनिषद्
ईश-केन-कठ उपनिषद्
प्रश्न-ऐत्तरेय उपनिषद्
तैत्तिरीय उपनिषद्
यजुर्वेद में गृहस्थ धर्म
विज्ञान और विज्ञान
वेद प्रवेशिका
वेद और वैदिक काल
श्रीमद्भगवद्गीता (अध्ययन)
सायंस और वेद
सांख्य दर्शन (भाष्य)
सृष्टि रचना

राजनीति

धर्म तथा समाजवाद
प्रजातांत्रिक समाजवाद
बुद्धि बनाम बहुमत
भारत : गांधी नेहरू की छाया में
राष्ट्र, राज्य और संविधान
वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान—हिन्दू राष्ट्र
हिन्दुत्व की यात्रा

संस्मरण

भाग्य-चक्र
भाव और भावना (संस्मरण)
मैं हिन्दू हूं

पं० राजाराम शास्त्री

न्याय-प्रवेशिका
नव-दर्शन परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुत्व की यात्रा

Central Library
168025
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त

081
168025

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© ईशान दत्त

R
089.9143
GUR-H

मूल्य 80-

प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन, 2 बी. डी. चैंबर्स,
10/54 देशबंधु गुप्ता रोड, करोल बाग,
नयी दिल्ली- 110005

दूरभाष 011-23553624, 011-23551344
चलभाप 9213527666, 7065618655
ई–मेल indiabooks@rediffmail.com
hindisahityasadan@gmail.com
Website www.hindisahityasadan.com
संस्करण 2020
मुद्रक संजीव आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन

'हिन्दुत्व की यात्रा' नाम से ही पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय स्पष्ट हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक द्वारा विद्वान् लेखक ने आदिकाल से आरम्भ कर अब तक के आर्य-हिन्दू की जीवन मीमांसा का विशद वर्णन किया है। न केवल इतना, अपितु उन्होंने तथाकथित पाश्चात्य पण्डितों के भारतीय मानस-पुत्रों, उनकी धारणाओं एवं मान्यताओं का निवारण एवं निराकरण भी किया है जो आर्य-हिन्दू को यहां का मूल निवासी नहीं मानते।

उन विकृत इतिहासकारों को भी इस पुस्तक में दो टूक उत्तर देने का प्रयास किया गया है जो आर्यों के प्राचीन ऐतिह्य की न केवल अनदेखी करते है, अपितु उसका उपहास भी करते रहे हैं।

लेखक की युक्तियुक्त मान्यता है कि हिन्दुत्व की यात्रा में आज सबसे बड़ी बाधा है मैकाले द्वारा चलाई शिक्षा, जिसने प्रायः सभी को दिगभ्रम कर दिया है। यहां तक कि हिन्दू संगठन का कार्य करने के लिए कटिबद्ध भी, उसी शिक्षा की उपज होने से, हिन्दू विरोधी रुख अपनाने में लीन हैं।

विशेषतया ऐसे ही लोगों के मस्तिष्क को झकझोरने के लिए लेखक ने इस विषय पर कलम उठाई है।

आशा है हमारे पाठक तथा हिन्दुत्व प्रेमी इससे प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे।

—अशोक कौशिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-क्रम

	प्राक्कथन	७
१.	स्वराज्य से पूर्व—१	२०
२.	स्वराज्य से पूर्व—२	३७
३.	गांधी ग्रान्दोलन का हिन्दुत्व पर प्रभाव	४६
४.	दोष कहां था ?	६३
५.	नैशनलिस्ट दल	७०
६.	राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ—१	७७
७.	राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ—२	६०
८.	भारतीय जनसंघ	६७
६.	हिन्दुत्व—ग्रापात्काल स्थिति में	१००
१०.	जनता पार्टी	१०५
११.	वर्तमान स्थिति	१०६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

हिन्दुत्व का अभिप्राय है—हिन्दुस्तान देश के रहने वालों का आचार-विचार; केवल आज के युग के रहने वालों का ही नहीं, वरन् आदिकाल से इस भूखण्ड पर रहने वालों का आचार-विचार।

संशय यह किया जाता है कि आजकल के रहने वालों का आचार-विचार वह नहीं रहा जो आज से दो-तीन सहस्र वर्ष पूर्व के निवासियों का था। आदिकाल की तो बात ही दूसरी है।

वर्तमान युग के अंग्रेजी तथा यूरोपियन सभ्यता से प्रभावित इतिहासकार यह समझते हैं कि यूरोप की उन्नत जातियों की भांति हिन्दुस्तान के वर्तमान रहने वालों के पूर्वज इस भूखण्ड पर रहते ही नहीं थे। यहां के मूल निवासी तो भील, गोंड, नाग इत्यादि वन्य जातियों के लोग हैं। वर्तमान काल में इस देश पर शासन करने वाले तथा यहां की भूमि एवं अन्य प्राकृतिक सम्पत्ति पर आधिपत्य रखने वाले तो कहीं बाहर से आये हैं। उनका विचार है कि वर्तमान हिन्दुस्तानी मध्य एशिया से अथवा यूरोप-एशिया के मध्यवर्ती किसी देश से आये थे।

इसके साथ ही वे लोग यह भी कहते हैं कि इस देश का नाम आर्यों के आने से पहले क्या था, पता नहीं। आर्य जब यहां आये तो उन्होंने इस देश का नाम भारत-वर्ष रखा था। पीछे जब आर्य लोग यहां स्थायी रूप में रहने लगे थे और बाहर के रहने वाले भारत पर आक्रमण करने लगे थे, तब विदेशियों ने इस देश का नाम, जो सिन्ध नदी के पूर्व की ओर था, हिन्दुस्तान रखा था।

वर्तमान युग के इतिहासकार यह भी कहते हैं कि आज भारत में रहने वालों की एक जाति नहीं। उत्तरी भारत में रहने वाले भिन्न जाति के हैं और दक्षिण में रहने वाले द्रविड़ जाति के हैं। वे समुद पार से यहां आये थे। भारत के पूर्व में रहने वाले भी आर्य समुदाय में से नहीं हैं। कुछ तो अज्ञात काल से यहां रहते हैं। कुछ गोंड इत्यादि लोग हैं, और भी कई नसलें यहां की रहने वाली हैं।

हम इसको मिथ्या प्रलाप मानते हैं। हमारे पास यूरोप वालों से अधिक समृद्ध प्राचीन इतिहास है। इस पर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारत के रहने वाले ही, जो अंग्रेजी मिथ्यावाद से शिक्षित हैं अथवा जो अनपढ़, परन्तु अपने को पढ़े-लिखे मानने वाले यहां के ब्राह्मण देवता हैं, इस इतिहास के विषय में इस मिथ्यावाद का उत्तर नहीं दे सकते। इस असमर्थता का कारण इस देश में पिछले एक-डेढ़ सहस्र वर्ष का विदेशी राज्य रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशियों का लम्बे काल तक राज्य रहने के कारण यहां के मूल निवासियों का बौद्धिक विकास नहीं हो सका।

वस्तुस्थिति यह है कि ग्राज का हिन्दू इस देश में लाखों वर्ष से रहता ग्राया है। हमारे देश के इतिहास के ग्रन्थों में ग्रौर चाहे कुछ ग्रशुद्ध तथा ग्रस्पष्ट हो, परन्तु इस विषय में सब एकमत हैं कि यहां के रहने वाले ग्रौर ग्राज के ग्रपने को हिन्दू कहने वालों के पूर्वज कम-से-कम उन्नीस-बीस लाख वर्ष से यहां रहते ग्राये हैं।

यह किस प्रकार है ? इसे समझने की ग्रावश्यकता ह। हम जाति, नसल ग्रथवा रंग-रूप से नहीं मानते। वे लोग एक जाति के समझे जाते हैं जिनका ग्राचार-विचार समान हो। ग्राज के इस देश, जिसे सन् १९४७ से भारत ग्रर्थात् इण्डिया कहा जा रहा है, के बहुसंख्यक कुछ सांझी मान्यताएं स्वीकार करते हैं, जिन्हें लाखों वर्ष पूर्व यहां के रहने वाले भी स्वीकार करते थे।

वे सांझी मान्यताएं इस प्रकार हैं—

(१) एक परमात्मा है जो इस जगत् का निर्माण करने वाला है ग्रौर वर्तमान जगत् को एक ग्ररब, सत्तानवें करोड़ वर्ष से चला रहा है।

(२) मनुष्य में एक तत्त्व जीवात्मा है जो कर्म करने में स्वतंत्र है। इसके कर्म करने की सामर्थ्य पर सीमा तो है। वह इसकी ग्रल्प शक्ति ग्रौर ग्रल्प ज्ञान के कारण है। इसपर भी उस सीमा के भीतर यह कार्य करने में स्वतंत्र है।

(३) कर्म का फल इस जीवात्मा के हाथ में नहीं है। वह ऋतों (Natural laws) के ग्रनुसार जीवात्मा को भुगतना पड़ता है।

(४) ये दोनों तत्त्व (परमात्मा तथा जीवात्मा) ग्रनादि, ग्रविनाशी हैं। एक ग्रसीम शक्ति ग्रौर ज्ञान का स्वामी है ग्रौर दूसरा ग्रल्प शक्ति ग्रौर ज्ञान का। ग्रल्प ज्ञान वाला संसार के मोहजाल में फंस जाता है ग्रौर बार-बार जन्म लेता है। इन जन्मों के लेने में दो प्रकार की गतियां हैं। एक ऊपर को ग्रर्थात् निम्न कोटि के जन्तुग्रों से श्रेष्ठ कोटि के जन्तुग्रों की ग्रोर ग्रौर दूसरी उच्च कोटि के जन्तुग्रों से निम्न कोटि के जन्तुग्रों की ग्रोर ले जाती है। ऊपर की गति का ग्रन्त ब्रह्मधाम में है।

(५) प्राणी का शरीर ग्रौर ग्रन्य निर्जीव वस्तुएं प्रकृति की बनी हैं। दोनों ग्रात्म तत्त्व प्रकृति से भिन्न हैं। प्रकृति चेतना ग्रौर गति से शून्य है।

(६) मानव जीवन में मनुष्य का स्तर उसके गुण, कर्म, स्वभाव के ग्रनुसार होता है। एक परिवार में, एक जाति में ग्रथवा एक राष्ट्र में एवं मनुष्य समाज में भी गुण, कर्म, स्वभाव से ही मनुष्य का मूल्यांकन किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) व्यवहार में यह सिद्धान्त है कि जैसा एक प्राणी अपने साथ व्यवहार चाहता है, वैसा वह दूसरों के साथ करे।

(८) सबके लिए व्यवहार की सांझी बात है—धैर्य, क्षमा, दया, मन पर नियंत्रण, चोरी न करना, शरीर और व्यवहार की शुद्धता, इन्द्रियों पर नियंत्रण, बुद्धि का प्रयोग, ज्ञान का संचय, सत्य (मन, वचन और कर्म से) व्यवहार और क्रोध न करना, ये दस लक्षण वाला धर्म माना जाता है।

(६) प्रत्येक व्यक्ति के लिए बुद्धि, तर्क और प्राकृतिक ऋतों (Natural laws) से सिद्ध बात ही माननीय है। यही व्यवहार श्रेष्ठ समझा जाता है।

इस प्रकार की आचार-व्यवहार सम्बन्धी कुछ मान्यताएं हैं जो इस देश में लाखों वर्ष से बसे जनसमूह में स्वीकार की गयी हैं।

ये लोग किसी समय वेदमत को मानने वाले कहे जाते थे। इन्हीं का नाम पीछे भारतीय पड़ा और अब हिन्दू है। इस जनसमूह में बाहर से कई अन्य भूखण्डों से लोग आये और इन मान्यताओं को स्वीकार कर भारतीयों में मिल गये। कई भिन्न-भिन्न रूप-रंग के लोग भी इस देश में आये और वे भी इन मान्यताओं को स्वीकार कर इनके साथ एक हो गये।

इस कारण हम कहते हैं कि मनुष्यों में जाति न तो देश में रहने से बनती है, न ही काले-गोरे रंग से बनती है। इसका लक्षण चपटे नाक वाले अथवा उभरी हुई गालों की हड्डी से भी नहीं है। ये तथा कुछ अन्य मान्यताएं हैं जिससे भारत में रहने वाले भारतीय कहे जाते थे और आजकल हिन्दू कहे जाते हैं।

ऐसी मान्यताओं वाले हिन्दुस्तान में सन् १९४७ से पहले लगभग बत्तीस-तेंतीस करोड़ लोग थे और इस प्रकार की मान्यताओं को न मानने वाले भी कुछ लोग हैं जो इस देश (हिन्दुस्तान) में रहते थे। उनकी संख्या लगभग सात-आठ करोड़ थी।

सन् १९४७ से पूर्व इस देश में राज्य अंग्रेज जाति के हाथ में था। अंग्रेज अपनी जाति किसी आचार-विचार के आधार पर नहीं मानते थे। उन्होंने अंग्रेज जाति में उन लोगों को ही स्वीकार किया था जो इंगलैण्ड में पैदा हुए और जिन्होंने वहां के नागरिकों के रजिस्टर में अपने नाम लिखवाये हुए हैं। वहां के उत्पन्न हुओं का रंग गोरा और कुछ नाक-कान इत्यादि की बनावट भी विशेष प्रकार की है।

ये लोग भारत में आये और बल-छल से यहां के राजा बन गये। इन अंग्रेजों में भी उक्त मान्यताओं को मानने वाले कुछ हैं, जो मान्यताएं यहां के मूल निवासी हिन्दू मानते हैं। इसपर भी वे अपने जन्म के कारण अपनी एक पृथक् जाति मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू तो अपने तथा पराये में भेद मान्यताओं के कारण मानते थे। हिन्दू समुदाय में जन्म, रूप-रंग, राशि जाति के लक्षण नहीं माने जाते।

अंग्रेजों से पहले इस देश में मुसलमान आये। मुसलमान मज़हब के आधार पर जाति मानते हैं। मज़हब भी मान्यताओं के साथ सम्बन्ध रखता है। परन्तु एक मज़हब की मान्यताएं उन मान्यताओं और आचार-विचार से भिन्न हैं जो हमने ऊपर भारतीयों अथवा हिन्दुओं के गिनाये हैं। सब मज़हबों में एक बात सांझी है। वह यह कि कोई पीर, पैगम्बर, मुर्शिद, गुरु, अवतार अथवा कोई धर्म पुस्तक, बिना हील-हुज्जत के स्वीकार की जाती है।

यह बात भारतीय अर्थात् हिन्दुओं की नहीं है। जो मान्यताएं हमने ऊपर गिनाई हैं, उनमें किसी गुरु, पीर, पैगम्बर अथवा इल्हामी पुस्तक का नाम नहीं है। कुछ आचरण हैं और कुछ स्वीकारोक्तियां हैं। उनमें भी एक शर्त है। वह यह कि जो बात प्राकृतिक नियमों के विपरीत हो और जो तर्क अर्थात् बुद्धि से सिद्ध न हो सके, वह माननीय नहीं।

हिन्दुओं की एक सर्व प्रतिष्ठित पुस्तक भगवद्गीता में यह कहा है कि—

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥ (भ० गीता २-४६)

अर्थ है—बुद्धि के संयोग से दूर (हटकर) कर्म तुच्छ है। इस कारण बुद्धि की शरण में आओ। फल की इच्छा से किया कर्म अत्यन्त हीन होता है।

यहां तक कि हिन्दू जाति में वेद को अपौरुषेय मानने में भी बुद्धि ही का योग है। परमात्मा, जीवात्मा, कर्मफल इत्यादि मान्यताओं का मानना भी बुद्धि से ही है।

उदाहरण के रूप में परमात्मा के अस्तित्व को तर्क से सिद्ध होने पर ही स्वीकार किया जाता है।

पहले तर्क का अर्थ समझना चाहिए। तर्क प्रत्यक्ष पर आधारित होना चाहिए। तर्क से सिद्ध करने वाली युक्ति को अनुमान-प्रमाण कहते हैं।

सांख्य दर्शन में अनुमान-प्रमाण के विषय में इस प्रकार लिखा है—

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः॥
(सांख्य दर्शन १-६०)

अर्थ है—जो वस्तु (सूक्ष्मता के विचार से अथवा दूरी के विचार से) इन्द्रियातीत हो, उसे अनुमान से सिद्ध किया जाता है। जैसे धुआं इत्यादि देखकर अग्नि का अनुमान किया जाता है।

अनुमान की भी परिभाषा है।

जब दो वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध देखा गया हो तो एक को देखकर दूसरे का अनुमान, प्रत्यक्ष समान सिद्ध है। जैसे धूम्रादि से अग्नि का ज्ञान होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार अति सूक्ष्म पदार्थों तथा अति दूर स्थित पदार्थों के अस्तित्व की उपस्थिति सिद्ध की जाती है और इसी प्रकार हम परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति की सिद्धि करते हैं। तीनों अव्यक्त पदार्थ हैं। अति सूक्ष्म हैं। परन्तु अनुमान-प्रमाण से इनके अस्तित्व को ऐसे ही सिद्ध माना जाता है, जैसे ये प्रत्यक्ष हों।

परमात्मा के विषय में यह प्रमाण इस प्रकार है। हम इस संसार में प्रत्यक्ष रूप में एक घटना नित्य देखते हैं। वह यह कि प्रकृति का प्रत्येक कण (भी) यदि खड़ा है तो खड़ा ही रहता है और यदि चल रहा है तो एक स्थिर गति से सीधी रेखा में चलता ही रहेगा, जबतक कि कोई बाहरी शक्ति उसको गति से बदल न दे।

यही सिद्धान्त ब्रह्मसूत्र (२-२-४) में इस प्रकार वर्णित है—

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ।। (ब्रह्मसूत्र २-२-४)

अर्थ है—प्रकृति के पदार्थों की स्थिति विना किसी वाहर की शक्ति के बदलती नहीं।

यही बात इंग्लैंड के एक विख्यात वैज्ञानिक न्यूटन ने कही है। उनके शब्द हैं—

Every partical of matter continues in a state of rest or motion with constant speed in a straight line unless compelled by a force to change that state.

Newton's Ist Law of Motion

इस प्रत्यक्ष बात को हम संसार में देखते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि पृथिवी, चन्द्र और तारागण किस की शक्ति से गति कर रहे हैं ? जिसकी शक्ति से गति कर रहे हैं, वह परमात्मा है। जगत् के पदार्थों को गति देने वाला और उनको अण्डाकार गति देने वाला जो कोई भी है, वह ही परमात्मा है।

इसी प्रकार ऊपर कही मान्यताएं जो हमने हिन्दुओं की गिनाई हैं, वे सबकी सब युक्ति से सत्य सिद्ध की जा सकती हैं।

ब्रह्मसूत्रों में यह कहा है कि—

जन्माद्यस्य यतः ।। (ब्रह्मसूत्र १-१-२)

अर्थ है जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ, चल रहा है और नष्ट होगा (वह ब्रह्म है)।

अर्थात् बुद्धि से सिद्ध बात को मानना यह हिन्दुत्व है।

हिन्दुओं में भी बहुत से मज़हब हैं। ये मज़हब कभी-कभी तो एक से अधिक पीर-पैगम्बरों को मानते हैं। उनके अपने-अपने अवतार, पैगम्बर इत्यादि हैं, परन्तु वे अपने-अपने पीर-पैगम्बरों को मानते हुए भी पूर्व लिखित मान्यताएं स्वीकार करते हैं। अर्थात् उनके पीर, पैगम्बर, अवतार उन मान्यताओं को मानने की सम्मति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते हैं। ये मजहब हैं : सिक्ख, बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव, काली, दुर्गा इत्यादि के उपासक। कुछ ऐसे भी हैं जो किसी को भी अपना राहबर नहीं मानते। उदाहरण के रूप में आर्यसमाजी हैं जो किसी भी देवी-देवता को नहीं मानते। इसपर भी परमात्मा, जीवात्मा, कर्मफल इत्यादि ऊपर कही नौ मान्यताओं को वे मानते हैं और हिन्दू हैं।

इसी प्रकार सिक्ख समुदाय है। वे ऊपर कही नौ मान्यताओं को मानते हैं, परन्तु राम, कृष्ण, बुद्ध इत्यादि किसी को भी गुरु अथवा अवतार नहीं मानते। इस कारण वे सिक्ख भी हिन्दू हैं। इन मान्यताओं को उनके आदिगुरु श्री गुरु नानक देव भी मानते थे।

अतः हिन्दू समुदाय में मत-मतान्तर तो कई हैं, परन्तु वे मत-मतान्तर हिन्दुत्व के स्वरूप को विकृत नहीं करते।

इन सबके विपरीत मुसलमान और ईसाई भी इस देश में रहते हैं। वे हिन्दू समुदाय में नहीं आ सकते। कारण यह है कि वे ऊपर कही नौ मान्यताओं को स्वीकार नहीं करते। एक हिन्दू महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, दादू, कबीर, राधा-स्वामी इत्यादि को मानता हुआ भी उक्त नौ मान्यताओं को मानता है और उन मान्यताओं को मानने वाले को अपने समान समझता है। यहां तक कि वह किसी भी मजहबी (मत-मतान्तर) की बात को न मानने वाले को भी अपने में ही समझता है। इस कारण वह हिन्दू है। क्योंकि वह हिन्दुत्व को मानता है।

मुसलमानों में ऐसा नहीं है। हजरत मुहम्मद साहब पर ईमान न लाने वालों को वे अपने समान नहीं समझते। उसे अपने से हीन मानते हैं। इस कारण एक मुसलमान परमात्मा पर अपना विश्वास रखता हुआ भी हिन्दू नहीं हो सकता। एक हिन्दू तो गुरु, पीर, पैगम्बर को स्वयं माने अथवा न माने, परन्तु न मानने वाले को तबतक अपने से पृथक् नहीं मानता जबतक वह उक्त (परमात्मा, जीवात्मा, मरण-जन्म, कर्मफल इत्यादि) मान्यताओं को स्वीकार करता है।

हिन्दुओं में यही विशेषता है। एक राधास्वामी पंथ में रहता हुआ भी उक्त नौ मान्यताओं को मानता हुआ हिन्दू समुदाय में है।

यह ठीक है कि मुसलमान और ईसाइयों के देखा-देखी कुछ हिन्दू समुदायों के लोग भी गुरु, पैगम्बर इत्यादि को न मानने वाले को त्याज्य मानने लगे हैं, परन्तु उनके समुदाय के ही लोग उनको मूर्ख मानते हैं।

यह विकृति हिन्दू समुदाय के कई अंशों में घुसती दिखाई देने लगी है। यह पिछले सात सौ वर्ष तक देश में मुसलमानी राज्य रहने के कारण और वर्तमान अंग्रेजी ढंग की शिक्षा के कारण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: २ :

मुसलमानी तथा अंग्रेजी राज्य तो गये, परन्तु अंग्रेजी काल की मैकाले की शिक्षा तो अब भी चल रही है। इस कारण हिन्दुओं में ऐसे बुद्धिविहीन घटक उत्पन्न होने लगे हैं जो देवी-देवताओं को तो नहीं पूजते, परन्तु वैसी ही मज़हबी बातें मानने लगे हैं जैसी मुसलमान अथवा ईसाई मानते हैं। ये बुद्धि का विभ्रम मुसलमानों को देखने अथवा अंग्रेजी शिक्षा के कारण बुद्धि के प्रयोग को छोड़ देने से हो रहा है।

हिन्दुओं में ही ऐसे लोग उत्पन्न होने लगे हैं जो हिन्दू के लक्षणों में घर में तुलसी का पेड़ लगाना अथवा परमात्मा का 'ओ३म्' नाम ही स्वीकार करना अनिवार्य मानने लगे हैं।

ये बाहरी लक्षण हैं। ये बदल भी सकते हैं। उदाहरण के रूप में स्वामी दयानन्द, आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ने यह कहा है कि देवी-देवताओं को परमात्मा मानने वाले पोप (पाखण्डी) हैं। इसपर भी स्वामीजी जीवनपर्यन्त हिन्दू समाज की देश में स्वायत्तता सम्पन्न करने में यत्नशील रहे थे। उनके अनुयायी आर्यसमाजी भी हिन्दू समाज की रक्षा के लिए यत्नशील रहे हैं। यद्यपि वे देवी-देवताओं में श्रद्धा नहीं रखते।

परन्तु यह बात मुसलमानों और ईसाइयों में नहीं है। वहां मज़हब तो लोहे का शिकंजा (frame) है जिसमें प्रत्येक मुसलमान अथवा ईसाई को रहना होता है।

अतः हिन्दुत्व मज़हब नहीं है। हिन्दुत्व मज़हबों से ऊपर है। हिन्दू रहते हुए किसी मज़हब को माना जा सकता है और फिर हिन्दुत्व की मान्यताओं को मज़हब से ऊपर माना जा सकता है।

हिन्दू एक जाति है। जाति उस विचार से, जो हमने ऊपर कही है। कुछ एक मान्यताओं को, जो बुद्धि से सिद्ध हैं, मानने वाला हिन्दू कहा जा सकता है। इन मान्यताओं को मानता हुआ यदि कोई किसी मज़हबी पीर-पैगम्बर को मान सकता है तो उसके मानने से वह हिन्दुत्व के विशेषण से वंचित नहीं होता।

मान लीजिये कि कभी कोई वैज्ञानिक निर्णयात्मक रूप में यह सिद्ध कर देता है कि एक जीवित प्राणी में जीवात्मा नहीं हैं। यह प्रकृति का ही एक विशेष प्रकार का संयोग है, जो प्राणी पिण्ड का रूप बन जाता है। हम समझते हैं कि अन्य मान्यताओं को स्वीकार करता हुआ और जीवात्मा को न मानता हुआ भी एक व्यक्ति हिन्दू ही कहायेगा। ऐसा पहले भी है।

वर्तमान युग में अमेरिका, जापान इत्यादि देशों में कुछ वैज्ञानिक यह सिद्ध करने का यत्न कर रहे हैं कि वे दो संयुक्त पदार्थों—डी० एन० ए० और आर० एन० ए० के संयोग से एक जीवित जन्तु (living organism) बना सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी तक इसे हम सम्भव नहीं मानते। इसपर भी हमारा कहना यह है कि प्रमाण और बुद्धि से सिद्ध बात को मानने वाला हिन्दू होने से इस बात के सिद्ध होने पर भी शेष बातों को मानते हुए हिन्दू ही रहेगा।

यह हम इसलिए कहते हैं कि हिन्दू मान्यताओं में एक बात सर्वोपरि है कि जगत् में हो रही घटनाओं और बुद्धि से सिद्ध बातों को स्वीकार करना। संसार में घटने वाली घटनाएं सत्य हैं। उनका होना सिद्ध है और उनको मानना ही चाहिए। प्राकृतिक नियमों को वेद में 'ऋत' कहा है और वहां ऋतों की बहुत महिमा गायी गयी है।

एक हिन्दू सर्वमान्य ग्रन्थ 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में जगत् को सत्य माना है। और सत्य जगत् का मूल कारण परमात्मा है। ब्रह्मसूत्रों में भी यह कहा है—

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्॥ (ब्रह्मसूत्र १-२-१)

अर्थ है—इस प्रसिद्ध जगत् में हो रहे को देखने से (ब्रह्म की सिद्धि) है।

इस हिन्दुत्व की यात्रा अर्थात् गति का वर्णन ही हम इस पुस्तक में लिख रहे हैं।

हिन्दुत्व की भावना अति अतीत काल से इस भारत खण्ड में मानी जाती रही है। आज भी प्रचलित है। परन्तु कुछ शताब्दियों से भारत में ही इसका विरोध और कुछ चतुर व्यक्तियों ने इसमें विकृति उत्पन्न करने का यत्न किया है। अतः इसकी प्रगति का वृत्तान्त हिन्दू समाज में विकृतियां आने और उनको सुधारने में सफलता का इतिहास बताने से ही पूर्ण हो सकता है।

: ३ :

यह हम बता चुके हैं कि इस हिन्दू समाज का प्राचीन नाम भारतीय था और उससे पहले देवता अर्थात् वेद मतावलम्बी थे।

बहुत प्राचीन काल में, लगभग आदि मानव-सृष्टि के समय एक ही पुरुष की दो पत्नियों से सन्तान भिन्न-भिन्न विचारों की हो गयी थी। यह इतिहास है कि कश्यप प्रजापति की दो पत्नियां दिति और अदिति से दैत्य और देवता उत्पन्न हुए। यहां देवता का अर्थ दिव्य गुणयुक्त प्राकृतिक शक्तियां नहीं हैं, प्रत्युत मानव है। दिति की सन्तान दैत्य कहायी और अदिति की सन्तान देवता। दोनों के संस्कार भिन्न-भिन्न होने के कारण दोनों की मान्यताएं भिन्न-भिन्न हो गयीं। अदिति की सन्तान की मान्यताएं वेदानुकूल थीं और दिति की सन्तान की मान्यताएं एक गुरु शुक्राचार्य के अनुसार थीं। अदिति की सन्तान देवताओं के गुरु नारद थे। नारद वेदमत को मानने वाला था। कई बार परिवार के दो अंगों—देवता और दैत्यों में युद्ध भी हुए। किसी-न-किसी प्रकार दैत्य, देवता दोनों जीवित और शक्ति-सम्पन्न रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बहुत ही प्राचीन काल की बात है और इसका वृतान्त बहुत ही संक्षेप में ज्ञात है। इन देवताओं की मान्यताओं को मानने वाले आर्य भी कहे जाते थे। यह कहा जाता है कि इस प्रकार की स्थिति त्रेतायुग के आरम्भ तक चलती रही। और तब किन्हीं खगोलिक (astronomical)कारणों से पृथिवी के उत्तरी गोलार्द्ध पर महाप्लावन (great inudation) आया और इससे महा विनाश हुआ। प्रायः सृष्टि विनष्ट हो गयी।

यह पहला विघ्न पड़ा आर्य संस्कृति की यात्रा में। हम आज इसे ही हिन्दुत्व कह रहे हैं। यह कहा जाता है कि कुछ ही लोग इस महाप्लावन में बचे और उनमें से जो वेद के विद्वान्, ऋषि थे, उन्होंने पुनः वेदज्ञान का प्रसार करना चाहा। इस महाप्लावन में बचने वालों में एक मनु नाम का नरेश था। उसके साथ कुछ अन्य विद्वान् लोग भी बचे थे। मनु और उसकी सन्तान ने पुनः वैदिक धर्म का व्यापक प्रचार किया। महाभारत में यह कहा गया है कि प्लावन से पूर्व इस वेद में कहे धर्म का नाम सात्वत धर्म था और इसी धर्म का प्रचार मनु के पुत्र इक्ष्वाकु ने किया। यह सात्वत धर्म ही कालान्तर में हिन्दू धर्म विख्यात हुआ।

इस प्रकार यह प्राकृतिक आघात हिन्दुत्व पर मिटाया गया और इसका धर्म के नाम पर प्रसार हुआ। महाभारत में स्पष्ट रूप में वर्णन मिलता है कि यह सात्वत धर्म वेद धर्म ही था। इसी काल में मनुस्मृति लिखी गयी और वह वेद धर्म की ही व्याख्या में है।

इक्ष्वाकु वंश में ही राम-लक्ष्मण इत्यादि महापुरुष उत्पन्न हुए। राम के पिता दशरथ के काल में उनकी राजधानी अयोध्या के वर्णन में यह कहा है कि प्रातःकाल वैदिक धर्म, यज्ञ, हवन इत्यादि घर-घर होते थे। अयोध्या के मैत्री के सम्बन्ध देव-लोक से थे।

राम के काल से पूर्व भारत में भौतिक उन्नति बहुत हुई थी। यहां तक कि अयोध्या नरेश एक देवासुर संग्राम में दिव्यास्त्र लेकर लड़ने गये थे। ये दिव्यास्त्र आजकल के आण्विक शस्त्रास्त्रों की प्रकार के ही थे। इनके प्रभाव का वर्णन इतिहास के ग्रन्थों में वैसा ही भयानक मिलता है जैसा आण्विक बम्ब का प्रभाव हिरोशिमा इत्यादि नगरों पर हुआ वर्णन किया जाता है।

हमारे इस वक्तव्य का अभिप्राय यह है कि जल-प्लावन का आघात वैदिक धर्म और संस्कृति पर मिट गया था।

इसके साथ जो तकनीकी विकास हुआ उसका प्रभाव भी रहने वालों के व्यवहार पर हुआ।

त्रेता युग की तकनीकी उन्नति को याज्ञयिक विकास कहा जाता है। प्रत्येक कार्य यज्ञ का रूप ही समझा जाता था और उसकी प्रक्रिया का आविष्कार किया गया था। यह प्रक्रिया यज्ञ थी। यह तकनीकी उन्नति मूलतः वेदमंत्रों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधारित ज्ञान था और इसका प्रयोग ऋषियों द्वारा समाज के कल्याण के लिए किया जाता था। इसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में आता है।

इस उन्नति की छाप सागर के द्वीपों में सत्ता-सम्पन्न रक्ष जाति में पड़ी थी। रावणादि राक्षस रक्ष जाति के घटक थे। रावण के पुरखा, ऐसा कहा जाता है कि, देवलोक के रहने वाले दैत्यों की ही सन्तान थे और उनकी जीवनचर्या को मानते थे। उस जीवनचर्या के साथ वैज्ञानिक उन्नति का नाम ही रक्ष सभ्यता के नाम से प्रसिद्ध है।

इस सभ्यता का पहला संघर्ष माली, सुमाली इत्यादि के काल में देवताओं के साथ हुआ और इस संघर्ष में निर्णायक युद्ध देवताओं के पश्चिम दिशा के दिक्पाल विष्णु ने किया था। परन्तु इसकी दूसरी तरंग रावण के काल में हुई थी। इसका सफल विरोध राम ने सुग्रीवादि वानर जातीय शूरवीरों की सहायता से किया था। इसी का रामायण में सविस्तार वर्णन है।

यह त्रेतायुग में एक महान् आघात हिन्दुत्व अथवा वैदिक संस्कृति पर हुआ था। इस आघात के निवारण करने वाले को राम के रूप में हिन्दू जाति आज तक स्मरण करती है।

आज के काल में भी वैज्ञानिक उन्नति का परिणाम ऐसा हो रहा है कि लोग सुख और कामनाओं के भोग के पीछे भाग पड़े हैं। और उस काल में भी वाम मार्ग का प्रादुर्भाव हुआ और नास्तिकवाद फैला। इन दोनों वादों का महाभारत काल में आरम्भ हो चुका था। यह एक अन्य आघात था वैदिक अथवा भारतीय संस्कृति पर। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदादि ग्रन्थों से वह प्रभाव पराजित किया गया। ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषद् त्रेता और द्वापर युग में लिखे गये और इन्होंने बहुत सीमा तक नास्तिक अर्थात् अवैदिक मत को पराजित कर इसका प्रभाव कम किया। और इस प्रकार हिन्दुत्व की रक्षा की।

एक बात हुई कि सूर्यवंशियों का ह्रास हुआ और चन्द्रवंशियों का सूर्य उदित हुआ। इस राजनीतिक परिवर्तन से एक अन्य आघात हुआ सात्वत धर्म पर। इसके स्वरूप में विकृति आयी।

महाभारत का युद्ध इस विकृति का परिणाम था। उस समय ब्राह्मण अपने आचार-विचार से पतित हो गये थे। राम के काल का शौर्य, सत्य और वचनपालन पर निष्ठा मिट-सी गयी थी। यह उन मान्यताओं के विपरीत आचरण ही था जिसे हम महाभारत के युद्ध में कारण पाते हैं। झूठ, फरेब, द्वेष, परमात्मा और यज्ञरूप जीवन की हंसी उड़ाने की प्रवृत्ति प्रचलित हो गयी थी। वास्तव में दुर्योधनादि का अवैदिक व्यवहार ही युद्ध का कारण था।

जहां राम के काल में सत्य, धैर्य, इन्द्रिय पर नियंत्रण की महिमा का गान है, वहां महाभारत में इसके विपरीत झूठ, फरेब, धोखा और वासनामय जीवन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिमा का वर्णन है। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य इत्यादि का जन्म इसके उदाहरण हैं। नियोग की प्रथा का प्रचार था। स्वयंवर का रूप बिगड़कर अपहरण हो गया था। भीष्म पितामह ने ही काशीराज की कन्याओं का अपहरण किया था। यह धन, वैभव, लोभ, मोह के आवेगों का परिणाम था।

इस वैदिक संस्कृति के धूमिल होने के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ। इसमें क्षत्रियों का विशाल विनाश हुआ, परन्तु परशुराम द्वारा किये विनाश के समय में जो पुनरुत्थान के उपायों का प्रयोग किया गया था, वह इस काल में नहीं किया जा सका।

इस आघात का निवारण पुराणों की सृष्टि से किया गया। और भारतीय संस्कृति का सिर जल से ऊपर रखने का यत्न किया गया।

इस समय एक अन्य आघात हुआ। यह आघात बौद्ध और जैन मतों के प्रचार के कारण हुआ। यद्यपि इन मतों का आविर्भाव भी वैदिक संस्कृति को ह्रास से बचाने के लिए ही हुआ था। जब क्षत्रियों के परस्पर लड़ मरने से क्षात्र धर्म का लोप हुआ तो विद्वान् ब्राह्मणों की पालना करने वाले राजा-महाराजाओं की संख्या बहुत कम रह गयी। ब्राह्मण या तो विद्या अर्जन कर सकता है अथवा धन का अर्जन। बिना धन के शरीर का पालन नहीं हो सकता और विद्या अर्जन में स्वस्थ, सबल शरीर की आवश्यकता थी। परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों ने अपने पालन के लिए वाम मार्ग की सृष्टि की। वाम मार्ग की प्रतिक्रिया हा बौद्ध और जैन मत थे। वास्तव में ये दोनों आन्दोलन भारतीय आचार-विचार की रक्षा के लिए प्रचलित हुए थे।

क्षत्रियों का व्यापक ह्रास हुआ तो ब्राह्मणत्व में भी ह्रास आया। इससे जीवन के प्रलोभन से संस्कृति की रक्षा का प्रयास बौद्ध और जैन मतों ने किया। इस ह्रास का विकल्प ही जैन और बौद्ध धर्म थे। इसपर भी चिकनी ढलवान पर लुढ़कती भारतीयता को बचाने के लिए जैन और बौद्ध मत का आविर्भाव अपर्याप्त था। ये दोनों प्रयास भारत की प्राचीन संस्कृति की रक्षा में ही थे। यद्यपि सफलता कम ही मिली। कारण यह कि परमात्मा आत्मा के स्थान शून्य तथा जड़ पदार्थ माना जाने लगा था।

बौद्ध और जैन मतों के प्रवर्तक तो वैदिक संस्कृति के विरोधी नहीं थे। महात्मा बुद्ध के जीवन की एक कथा है। एक बार एक विद्वान् ब्राह्मण महात्मा बुद्ध के पास आया और पूछने लगा, 'महाराज ! आप परमात्मा को मानते हैं अथवा नहीं ?' तब बुद्ध ने कहा था, 'मैं तो यह कहता हूं—सत्य बोलो, दयाभाव रखो, कामनाओं को वश में करो।'

इसका अभिप्राय यह था कि चरित्र को ठीक रखो और परमात्मा अपनी सुध स्वयं ले लेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाम मार्ग और नास्तिक्य के बढ़ जाने का विरोध करने के लिए बौद्ध और जैन मतों की स्थापना हुई। इनके प्रवर्तकों में भारतीय आचार-विचार की मान्यताओं के विरुद्ध कुछ नहीं था। यही कारण है कि बौद्ध और जैनियों से वेदानुयाइयों का संघर्ष राजनीतिक ही रहा, परन्तु सांस्कृतिक स्तर पर नहीं हुआ।

बौद्ध धर्म के काल में और उसके कुछ ही पीछे, बुद्धियुक्त व्यवहार का विरोध हुआ। इसके अग्रणी स्वामी शंकराचार्य हुए। बुद्धि भ्रम में डालने वाली है, ऐसा मानने वालों के गुरु स्वामी शंकराचार्य थे। यह 'महापुरुष' मानते थे कि जन्म से जाति होती है; शूद्र को वेद सुनने का भी अधिकार नहीं; यदि भूल से भी वह सुन ले तो उसके कान में गर्म सीसा डाल दिया जाये। स्वामीजी यह भी मानते थे कि यह जगत् मिथ्या है अर्थात् ब्रह्म ही भ्रम में फंसकर इस मिथ्या को सत्य मान रहा है। इस प्रकार की अयुक्त बातों का प्रचार करने वाला एक मत हुआ जिसका प्रचार स्वामी शंकर कर गये। यह एक अन्य और भारी आघात हिन्दुत्व पर हुआ।

परिणाम यह हुआ कि बौद्ध और जैन मत ने जहां धर्म और आचार की महिमा को उज्ज्वल करने का यत्न किया था, वहां वेदान्त मत ने प्राचीन शास्त्रों तथा संस्कृति को ही बुद्धि-विहीनता में बदलने का वृहत् प्रयास किया।

इस मत के प्रचार के परिणामस्वरूप ही भारत जैसे विशाल देश के ऐक्य का सूत्र टूटा और फिर देश पराधीन हुआ।

गुप्तकाल में यद्यपि वेदान्त (शंकराचार्य के) मत को पछाड़ने का यत्न किया गया, परन्तु जाति में बुद्धि तथा तर्क को पुनः प्रतिष्ठित नहीं किया जा सका।

इस बुद्धिवाद के ह्रास से ही भारत देश का मनोबल दुर्बल हुआ और इस्लाम जैसे युक्ति-विहीन एवं क्रूर मज़हब के कुछ लोग देश को सात सौ वर्ष तक और पीछे डेढ़ सौ वर्ष तक अंग्रेज पांव तले रोंदते रहे।

इस अबुद्ध व्यवहार का विरोध राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी दयानन्द ने किया। राजा राममोहन का विरोध योरुपियन तथा अंग्रेजी विचारधारा के बल पर था, जिसका भारी दुष्परिणाम आज हिन्दुत्व को सहना पड़ रहा है।

स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा बौद्धिक थी, परन्तु वह स्वामी शंकराचार्य के अद्वैत मार्ग का ही अवलम्बन लेते रहे। स्वामी दयानन्द का मार्ग शुद्ध तर्कपूर्ण था। उनका महान् ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' तर्कयुक्त खण्डन-मण्डन से ओत-प्रोत है।

यह सम्भव प्रतीत होता है कि स्वामी दयानन्द का प्रचार-कार्य इस वेदान्त मत से उत्पन्न निष्क्रियता को मिटाकर पुनः प्राचीन वैदिक भारतीय अथवा हिन्दुत्व की मूल धारा को प्रकाशित करे।

इस समय भारत अर्थात् हिन्दुस्तान को एक अन्य रोग लग गया है। वह रोग है अंग्रेजी शिक्षा का। हम समझते हैं कि इसका दूसरा नाम है—अबुद्ध शिक्षा। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा मैकाले ने भारत में प्रचलित की थी और सन् १८३२ से इसका आरम्भ किया गया। यह रोग अभी भी व्यापक और उग्रतर हो रहा है। यह शिक्षा हिन्दुत्व की जड़ों को निरन्तर खोखला कर रही है।

इसका विरोध स्वामी दयानन्द के अनुयाइयों ने करने का यत्न किया था, शिक्षा की गुरुकुल प्रणाली को प्रचलित करके। परन्तु इस रोग का पृष्ठ-पोषण मैकाले के धनी शिष्य और वर्तमान सरकार द्वारा हो रहा है। परिणामस्वरूप हिन्दुत्व पर एक महान् संकट उत्पन्न हो रहा है।

इसी रोग की ही यह कथा है और इस संकट को पार पाने के उपाय सुझाने के लिए ही यह पुस्तक लिखी जा रही है।

विषय है हिन्दुत्व, जो किसी काल में भारतीयता और उससे पूर्व वैदिक संस्कृति के नाम से विख्यात था। इस हिन्दुत्व की यात्रा वर्तमान युग में वर्णन करने का यह एक प्रयास है।

अभी तक यह (हिन्दुत्व) जीवित है। यद्यपि अनेक संकट इस पर आये हैं और आ रहे हैं, परन्तु यह मिटा नहीं और हमें आशा है मिटेगा भी नहीं। इसी के विषय में एक कवि ने कहा है—

यूनान मिस्र रोमां सब मिट गये जहां से।
कुछ बात है कि हस्ति मिटती नहीं हमारी ।।

इसका भी एक कारण है। वह यह कि हिन्दुत्व के मूल तत्त्व सत्य पर आधारित हैं जो जाति के लिए संजीवनी का कार्य करते रहते हैं।

१८/२८, पंजाबी बाग, नयी दिल्ली-११००२६ — **गुरुदत्त**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

स्वराज्य से पूर्व—१

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में हिन्दुस्तान में मुस्लिम राज्य अन्तिम श्वासों पर पहुंच गया था। मराठे बढ़ते-बढ़ते दिल्ली तक पहुंच गये थे। बुन्देलखण्ड हिन्दू राज्य में परिवर्तित हो चुका था। पंजाब में सिक्ख मिसलों ने अधिकार जमा लिया था। यद्यपि अफगान सरकार से झड़पें होती रही थीं, इसपर भी मिसलें जनता से कर वसूल करती थीं। इसका एक अंश सर्वत खालसा को दिया जाता था और शेष मिसलों के प्रबन्धक सरदार जनता की रक्षा तथा प्रबन्ध में व्यय करते थे।

बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य था जो वर्तमान बिहार प्रान्त के बहुत-से भाग पर छाया हुआ था। संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में जमींदारों का शासन था। लखनऊ में नवाब थे जो लखनऊ और उसके पश्चिम में कुछ ही दूर तक शासन करते थे। शेष क्षेत्र पर स्वतन्त्र जमींदार थे। कभी-कभार लखनऊ से कोई कर प्राप्त करने आता तो उसे कुछ देकर टाल दिया जाता था।

राजस्थान तो औरंगजेब के देहावसान के कुछ वर्ष उपरान्त ही स्वतन्त्र हो चुका था। नेपाल अपने पांव हिमालय की तराई में फैला रहा था।

दक्षिण में छोटे-छोटे राज्य थे जो स्वतन्त्र थे। मैसूर में सुल्तान टीपू का अन्त हो चुका था। धीरे-धीरे हिन्दुस्तान में अंग्रेज कम्पनी के संरक्षण में विदेशी राज्य विस्तार पा रहा था।

यह थी राजनीतिक स्थिति हिन्दुस्तान की; परन्तु सांस्कृतिक स्थिति यह थी कि बड़े-बड़े नगरों को छोड़कर अधिकांश देश ने इस्लामी विचार को स्वीकार नहीं किया था। बहुत-से लोग ऐसे भी थे जो बल-छल अथवा स्त्रियों के प्रलोभन से इस्लाम धर्म को स्वीकार कर चुके थे, परन्तु रहन-सहन और मान्यताओं से वे हिन्दू ही थे। वे मुसलमान थे, इस कारण कि हिन्दुत्व के ठेकेदार अपने को इतना पवित्र मानते थे कि बल-छल से पतित किये हुओं को भी पुनः हिन्दू कहाने का अधिकार नहीं देते थे।

हिन्दू समाज ने कुछ तो संसार को मिथ्या मानने वालों की हीन बुद्धि के कारण और कुछ छुआछूत की मिथ्या धारणा के कारण, अपने चारों ओर एक ऐसी सुदृढ़ दीवार खड़ी कर रखी थी कि उसके कारण हिन्दुओं का स्वेच्छा से दीवार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Central Library
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
168025
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

बाहर जाना प्रायः असम्भव था। परन्तु साथ ही एक बार दीवार से बाहर गये हुए के लिए पुनः भीतर आने का मार्ग भी नहीं था। यह अवस्था केवल सम्पन्न और कही जाने वाली उच्च जातियों में ही नहीं थी, वरन् निम्न स्तर की जातियों में भी थी। हिन्दू नाम के साथ हिन्दुओं का इतना दृढ़ सम्बन्ध बना था कि हिन्दू समाज वास्तव में अपने ही बनाये घेरे में कैद थी।

इस स्थिति का कारण था। उसका इस पुस्तक से सम्बन्ध नहीं है। इसपर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि जहां इस स्थिति से हिन्दू समाज की विधर्मियों के जोर, बल तथा छलना और प्रलोभनों से रक्षा हो सकी थी, वहां यह भी सत्य है कि हिन्दू समाज स्वयं एक बंदी के रूप में हो रही थी। जब किसी नगर में किसी आततायी के द्वारा मार-काट होती हो, वहां बंदीगृह में बंद व्यक्ति उस मार-काट से सुरक्षित तो अनुभव करता है, परन्तु इसका अर्थ यह भी था कि जो हिन्दू व्यक्ति अपनी परम्परागत मान्यताओं से च्युत हुआ, वह उस बंदीखाने में बंद सजातियों से सम्पर्क नहीं रख सका। वह मान्यताओं को भी भूल गया।

हमने इस पुस्तक के प्राक्कथन में बताया है कि पहले जो मान्यताएं आचार और व्यवहार से सम्बन्ध रखती थीं, वह आदिकाल से अक्षुण्ण चली आ रही थीं। भारत के जनसमूह रूपी सागर में लोग व्यक्तिगत अथवा बड़े-बड़े समूहों में अथवा आक्रमण करने वाली सेनाओं के रूप में आते थे और सागर में गिरने वाली नदियों की भांति उसमें विलीन हो जाते रहे। हूण, कुषाण, शक और उनसे पहले भी कई लोग आये और भारत के हिन्दू सागर में मिलकर हिन्दू ही हो गये।

परन्तु जब हिन्दू बंदीखाने की दीवार की भांति स्व-निर्मित घेरे में घिरा, तब इसकी यह शक्ति क्षीण हो गयी। जब हिन्दू समाज ने अपने को सुदृढ़ घेरे में बांधा तो सागर की भांति इसमें आने वाली नदियों को आत्मसात नहीं कर सका। परिणाम यह हुआ कि जो एक बार हिन्दू समाज से बाहर हुआ, उसका सांस्कृतिक सम्पर्क टूटा और वह स्थायी रूप में जाति से बाहर हो गया।

कठिनाई इस्लामी काल में आयी। अफ़गान, मुगल, तुर्क इत्यादि जब आये तो ये युद्ध विद्या में हिन्दुस्तान के शासकों से श्रेष्ठ सिद्ध हुए और वे उतनी जल्दी शासन रहित नहीं किये जा सके जितने उनसे पूर्व में आये आक्रान्ता किये गये थे। हूण, कुषाण, शक इत्यादि तब हिन्दू समाज में हज़म हुए थे जब वे पराजित किये जाकर शासनरहित किये गये थे। यही बात इस्लामी आक्रान्ताओं से होती। वे पराजित होने आरम्भ हुए थे अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में और अफ़गानिस्तान में नये मुजाहिद आने रोके गये थे, सर्वत खालसा के अधीन मिसलों से। हिन्दुस्तान में इस्लामी शासन के निस्तेज होते ही हिन्दू विद्वान् विचार करने लगे थे कि धोखे-घड़ी से बनाये मुसलमानों का क्या किया जाये कि पश्चिमी यूरोप से अंग्रेज यहां टपक पड़े और वे अपने शासन का विस्तार करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेज आया था व्यापार करने के लिए, परन्तु अपने साथ ईसाई पादरी लाया था। सैमिटिक प्रथा के अनुसार राजनीति दो टांगों पर खड़ी होती है, सेना और धर्मगुरुओं पर। अतः फ्रांसीसी तथा अंग्रेज यहां आये तो व्यापार करने थे, परन्तु सेना और धर्मगुरु दोनों साथ लाये थे और दोनों ने यहां के शासकों की दुर्बल अवस्था देख अपना कार्य आरम्भ किया। जर्जर हिन्दू समाज की अवस्था के कारण सेना भी सफल हुई और पादरी भी सफल होने लगे।

यह प्रक्रिया बंगाल और मद्रास में आरम्भ हुई। दोनों स्थानों पर सेना ने दुर्ग बनाने आरम्भ किये तो पादरियों ने गिरजाघर बनाकर हजरत ईसा की उम्मत बढ़ाने का यत्न किया।

सेना को प्लासी की लड़ाई में सफलता मिली, परन्तु पादरियों की सफलता बहुत ही न्यून थी। हिन्दू समाज के चारों ओर शुद्धता की सुदृढ़ प्राचीर के कारण समाज के निम्न स्तर के लोगों तक ही ईसाई पादरी हाथ फैला सके। यह कम्पनी के शासकों की चिन्ता का विषय बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में व्यापारी कम्पनी के साथ इंग्लैण्ड की सरकार ने भी शासन भार में सहयोग देना आरम्भ कर दिया था और वह पादरियों का काम ढीला देख विचार करने लगा कि किस प्रकार पादरियों के कार्य की शासन सहायता कर सकता है।

उद्देश्य शासन और पादरियों का एक ही था। दोनों चाहते थे कि हिन्दुस्तान जैसा विशाल देश सदा के लिए अंग्रेजी शासन के अधीन वफादार प्रजा बनकर रह सके। इस उद्देश्य से सन् १७५७ में प्लासी के युद्ध के उपरान्त ही योजनाबद्ध कार्य आरम्भ हुआ था।

: २ :

हिन्दुस्तान को सदा के लिए इंग्लैण्ड के अधीन और उसके आश्रित रखने के लिए शासन ने मैकाले की शिक्षा नीति स्वीकार कर ली। इस नीति का अभिप्राय यह था कि हिन्दू अथवा हिन्दुस्तानी समाज में जो कुछ प्राचीन अच्छा-बुरा था, वह यहां के लोगों से सदा के लिए निकालकर इंग्लैण्ड की प्रत्येक बात स्वीकार करा ली जाये।

जहां मुसलमानी राज्य में हकीकत राय, गुरु तेग बहादुर, बंदा वैरागी, शिवा-जी जैसी विभूतियां उत्पन्न हो रही थीं और जहां मीरा, तुलसी, कबीर, दादू, पाण्डुरंग, गुरुनानक और अनेक अन्य संत-महात्मा भी उत्पन्न हो रहे थे, वहां अंग्रेजी शिक्षा ने क्या किया ? वह इस विषय में एक विचारशील व्यक्ति का कथन यहां देने से स्पष्ट हो जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगाल के एक गवर्नर थे—लार्ड रौनल्डशे (Lord Ronaldshay)। वे अपनी पुस्तक '*The Heart of Aryavarta*' के पृष्ठ ४५ पर लिखते हैं--

By the middle of the nineteenth century a period of intellectul anarchy had set in, which swept the rising generation before it like a craft which has snapped its moorings. Westernism became the fashion of the day and Westernism demanded of its votaries that they should cry down the civilization of their own country. The more ardent their admiration for everything Western, the more vehement became their denunciation of everything Eastern. The ancient learning was despired; ancient customs and traditions were thrust aside; ancient religion was despised as an outworn superstition. The ancient foundations upon which the complex structure of Hindu society had been builtup were undermined; and the new generation of iconoclasts found little enough with which to underpin the edifice which they were so recklessly depriving of its own foundations.

Qtd. by Pyare Lal in *Mahatma Gandhi*, **Phase 1,**
Page 47

अर्थात् —उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक ऐसा समय आ गया, जिसमें बौद्धिक अव्यवस्था (anarchy) व्यापक हो रही थी, जो आ वाली सन्तानों को अपने वेग से ऐसे बहा ले जाने लगी थी, जैसे कोई जहाज, जिसका लंगर टूट गया हो। पाश्चात्य विचार-आचार उन दिनों काल-धर्म (fashion of the day) हो गया था। यह काल-धर्म यह मांग करने लगा था कि इसके अनुयायी अपने देश की संस्कृति की ही निन्दा करें। जितना कोई पाश्चात्य सभ्यता की प्रशंसा करता था, उतने ही बल से वह उस सबकी निन्दा करता था जो कुछ पूर्वी था, जो कुछ प्राचीन था, उससे घृणा होने लगी थी। प्राचीन ज्ञान, प्राचीन रीति-रिवाज, प्राचीन मजहब सबकी निन्दा और धृणा किया जाने लगा था, अर्थात् वह सबकुछ पुराना और वहम था। प्राचीन ज्ञान, जिसपर हिन्दू समाज का ढांचा बना था, उसके नीचे बारूद रख दिया गया था। ये नये मूर्तिभंजक की पीढ़ी तैयार हो रही थी जो बेतहाशा अपनी ही नींव को खोखला करने लगे थे।

यही सज्जन इस पुस्तक में एक अन्य स्थान पर लिखते हैं कि एक विख्यात बंगाली कवि माइकल मधुसूदन दत्त अभिमान से लिखता है कि वह स्वप्न भी अंग्रेजी में ही लेता है (even dreamt in English)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शिक्षा की भारत में नींव रखने वाले श्री मैकाले ने अपने पिता को एक पत्र में लिखा था –

No Hindoo who has received an English education, even remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, but many profess themselves as Deists and some embrace Christianity. It is my firm belief that if our plans of education are followed up, there will not be a single idolater (Hindu) among the respectable classes in Bengal thirty years hence···I heartily rejoice at the prospect.

Qtd. by Otto Trevlyan in *'The Life & Letters of Lord Macaulay'*, **Page 464**

अर्थात् –कोई हिन्दू जिसने अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण की है, कभी भी सत्य हृदय से हिन्दू धर्म से सम्बद्ध नहीं रह सकता। कुछ मौखिक रूप से अपने को हिन्दू कहते हैं, केवल नीति के विचार से, परन्तु वहुत से ईसाई हो जाते हैं। यह मेरा पक्का विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा की विधि चलती रही तो हिन्दू प्रतिष्ठित बंगाली परिवारों में तीस वर्ष में कोई भी मूर्तिपूजक हिन्दू नहीं रहेगा।

इससे एक वात तो स्पष्ट है कि अंग्रेजी सरकारी शिक्षा को चालू करने वालों का उद्देश्य क्या था।

इस शिक्षा का उद्देश्य था हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू सभ्यता के नीचे वारूद लगाकर इसको नष्ट करना।

यह शिक्षा तीस वर्ष-तो क्या, एक सौ पचास वर्ष में भी अभी तक अपना उद्देश्य पूर्ण नहीं कर सकी परन्तु यह शिक्षा को निर्माण करने वालों का दोष नहीं है। इसका कारण एक दूसरा है। यह हम आगे चलकर वर्णन करेंगे।

इसपर भी यह तो निश्चय ही है कि इस शिक्षा ने हिन्दुत्व को पर्याप्त हानि पहुंचाई है।

इस शिक्षा का प्रभाव ब्रह्मसमाजियों पर हुआ। ब्रह्मसमाज के संस्थापक श्री राजा राममोहन राय तो उपनिषदों के भक्त थे और यह कहा जाता है कि जब ब्रिस्टल (इंगलैण्ड) में उनका देहान्त हुआ तो 'ओ३म् ओ३म्' का जाप करते हुए उन्होंने देह का त्याग किया, परन्तु उनसे स्थापित ब्रह्मसमाज के नेता सन् १८७१ में नितान्त ईसाई हो चुके थे। विना विचार किये ईसाइयों की 'ट्रिनेटी' को हिन्दुओं का त्रैतवाद कहते थे। अभिप्राय यह कि उपनिषदों के भक्त से चलाई सभा का अध्यक्ष हिन्दू धर्म से सर्वथा अनभिज्ञ हो गया था। यह इस देश में अंग्रेजी शिक्षा का ही परिणाम था। लार्ड रौनल्डशे का कहना सर्वथा सत्य था कि इस शिक्षा ने हिन्दू नवयुवकों के मस्तिष्क में अव्यवस्था (anarchy) उत्पन्न कर दी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका एक उदाहरण एक रमेशचन्द्र दत्त अपनी पुस्तक *'The Economic History of British India'* (Under Early British Rule) में लिखते हैं—

In my younger days, I was brought up among those who had been in schools and colleges in 1837, when the Queen ascended the throne; and I do not exaggerate facts when I state that nothing could exceed the appreciation of English literature, thought and character, nothing could exceed the loyalty to the British rule which these men felt and expressed in their everyday conversation. They had recollections of the times of Bentinck, Elphinstone and Munro; they had seen Macaulay, Trevelyan and Metcalfe; and a faith in English truth was a part of their beliefs.

Qtd. by Pyare Lal in *Mahatma Gandhi*, **Phase I, Page 158**

अर्थात्—मैं जब अभी छोटा ही था, मैं उनमें पला हूं जो सन् १८३७ में स्कूलों और कालिजों में पढ़ते थे। मैं अतिशयोक्ति नहीं कर रहा, जब यह कहता हूं कि उन लोगों को अंग्रेजी साहित्य, अंग्रेजी विचार और अंग्रेजी चरित्र से अधिक श्रेष्ठ कुछ दिखाई नहीं देता था। अंग्रेजी राज्य की राज्यभक्ति, जो वे लोग अपनी नित्य की बातचीत में अनुभव करते और कथन करते थे, वह अतुलनीय थी। उनके मस्तिष्क में उस काल के बैण्टिक (Bentinck), ऐलफिस्टन (Elphinstone) और मुनरो (Munro) बसे हुए थे। उन्होंने मैकाले (Macaulay), ट्रैवेलियन (Trevelyan) और मैटकाफ (Metcalfe) को जाना था और अंग्रेजी सच्चाई में विश्वास उनकी धारणा का एक अंग था।

यह बात थी जो पाश्चात्य शिक्षा के कारण लोगों में बैठ रही थी। यह इस बात का परिणाम था कि उन दिनों अंग्रेजी शिक्षा हिन्दुस्तानी युवकों को अंग्रेजी गुलाम बनाने के लिए दी जाती थी।

यहां तक कि गांधीजी भी इस शिक्षा की उपज थे। वह भी कुछ वैसा ही समझते थे जैसे श्री रमेशचन्द्र दत्त ने सन् १८३७ के पढ़े-लिखों की बात लिखी है। महात्मा गांधी जब इंग्लैण्ड से अपनी शिक्षा समाप्त कर लौटने लगे तो उनसे किसी अंग्रेज ने पूछा कि वह इंग्लैण्ड में किस कारण आया था और वकालत पढ़ने लगा था तो गांधीजी ने बताया, 'एक शब्द में कहूं तो वह महत्त्वाकांक्षा थी। मैं अपने परिवार की परम्परा रखना चाहता था और अपने पिता की आशाओं को पूर्ण करना चाहता था।' साथ ही—

I thought to myself, if I go to England, not only shall I

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

become a barrister··· but I shall be able to see England, the land of philosophers and poets, the very centre of civilization.

Qtd. by Pyare Lal in *Mahatma Gandhi*, **Phase I, Page 224**

अर्थात्—मैंने मन में विचार किया कि यदि मैं इंग्लैण्ड ज़ाऊंगा तो मैं न केवल बैरिस्टर बन जाऊंगा वरन् मैं इंग्लैण्ड, मीमांसकों और कवियों के देश को देखूंगा जो सभ्यता का केन्द्र स्थान है।

यह शिक्षा हिन्दुस्तान के, विशेष रूप में हिन्दू युवकों को अपने उज्ज्वल और उन्नत भूतकाल से सम्बन्ध विच्छेद करने में सफल हो रही थी। देश का दुर्भाग्य ही है कि इस शिक्षा से दीक्षित अब भी आगे लाये जा रहे हैं।

देश की सरकार ने जब यह निश्चय किया कि अंग्रेजी पढ़े-लिखों को ही सरकारी नौकरी मिलेगी और उनकी अंग्रेजी की योग्यता पर ही उनकी उन्नति निर्भर है तो हिन्दुत्व के लिए एक महान् संकट उपस्थित हो गया।

यह शिक्षा हिन्दुत्व की जड़ों में तेल दे रही है और इस शिक्षा के पढ़े-लिखों को ही शिक्षा में सुधार करने के लिए कहा जाता है। एक अंधे को अंधे से ही मार्ग-दर्शन प्राप्त करने की आशा की जाती है।

अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य यह था कि ऐसे हिन्दुस्तानी उत्पन्न किये जायें जो अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी आचार-विचार के भक्त बन जायें, तब इस देश में अंग्रेजी शासन स्थाई अथवा कम-से-कम दीर्घकाल के लिए स्थापित हो जायेगा।

अंग्रेजी शासन तो दीर्घकाल के लिए स्थापित न रह सका, परन्तु अंग्रेजी भाषा के दास और अंग्रेजी आचार-विचार के भक्तों का राज्य हो गया है।

एक बार द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त चर्चिल अमेरिका गया था। वहां के लोगों ने उससे पूछा कि इंग्लैण्ड ने अपने विशाल साम्राज्य को खोकर क्या पाया है तो उसने कहा था कि हमने अंग्रेजी भाषा का उससे भी बड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया है।

यह हिन्दू जनमानस की दासता का प्रथम कारण हुआ है।

: २ :

इतना ही नहीं। अंग्रेजी सरकार और अंग्रेजी नीतिज्ञों ने हिन्दुत्व के विरोध का एक अन्य आयोजन भी किया था।

ऐलन ओक्टेवियन ह्यूम (Allan Octavian Hume) बंगाल की सिविल सर्विस में सन् १८४९ में आया था और सन् १८७९ में वह काम बदलने पर विवश किया गया था। जब वह सरकारी सेवा में था, तब भी अपने स्वतन्त्र विचार के लिए **प्रसिद्ध था।** इसपर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह तब की प्रजा को राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने के स्वप्न ले रहा था। इसके पूर्ण प्रयास का निष्कर्ष यह था कि यह हिन्दुस्तानियों, विशेष रूप में हिन्दुओं को सरकार अंग्रेजी की वफादार प्रजा बनाना चाहता था।

सन् १८८३ में वह सेवामुक्त हो गया।

इस समय उसके मस्तिष्क में हिन्दुस्तान का 'कल्याण' करने का विचार उत्पन्न हुआ और उसने सन् १८८३ में एक गश्ती पत्र समाचार-पत्र में छपवाया, जिसमें हिन्दुस्तानी युवकों का आह्वान किया गया कि वे अपनी जन्मभूमि और अपने लोगों के कल्याण के लिए संगठिन हो जायें।

यह पत्र उस समय के विश्वविद्यालयों के स्नातकों के नाम ही था। अंग्रेजी समाचार-पत्रों में यह छपा और अंग्रेजी पढ़े-लिखों में उसने उत्तेजना उत्पन्न की और एक अनौपचारिक बैठक कुछ अंग्रेजी पढ़े हिन्दुओं की बम्बई में बुलाई गयी।

यह बात अब सिद्ध हो चुकी है कि ह्यूम की योजना को तत्कालीन सैक्रेटरी ऑफ स्टेट तथा वायसराय हिन्द का आशीर्वाद प्राप्त था। यहां तक कि वायसराय हिन्द ने ह्यूम को समझा दिया था कि उसकी संस्था का उद्देश्य और कार्यक्रम क्या होना चाहिए और ह्यूम उसे मान गया था।

इसके साथ ही ह्यूम का जीवनचरित्र लिखने वालो ने, यह भी बताया है कि जिन दिनों ह्यूम बंगाल में एक कलैक्टर के पद पर नियुक्त था तो उसे यह सप्रमाण विदित था कि हिन्दुस्तान के साधु-संत, महात्मा सरकार के प्रति असंतोष और देश में विद्रोह फैलाने का यत्न कर रहे हैं।

अतः यह निश्चित है कि ह्यूम साहब के मन में, जब उसने एक गश्ता पत्र हिन्दुस्तान के विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम छपवाया था तो हिन्दुस्तान का भला करने से अधिक हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज्य को सुदृढ़ करना ही लक्ष्य था।

ह्यूम चाहता था कि देश का नेतृत्व अंग्रेजी पढ़े-लिखे विश्वविद्यालय के स्नातकों के हाथ में आ जाये। वह साधु-संत, महात्माओं के हाथ में न रहे।

उसकी योजना को हिन्दुस्तान के वायसराय ने यह मोड़ दिया कि सामाजिक और आध्यात्मिक नेताओं का स्थानापन्न न बनाया जाये वरन् राजनीतिक नेताओं को संगठित कर सरकार अंग्रेजी का भक्त बनाया जाये। ह्यूम वायसराय की योजना को सहज ही मान गया।

यह वह काल था जब हिन्दुस्तान में अंग्रेजी सरकार हिन्दुस्तान के हिन्दू समुदाय के विरुद्ध मुसलमान समुदाय को संगठित कर रही थी। सरकार का यह विचार था कि हिन्दू समुदाय का विरोध एक ओर मुसलमान करेंगे और दूसरी ओर ये अंग्रेजी पढ़े-लिखे स्नातक हिन्दू विचारधारा का विरोध करेंगे। इस कारण यदि ह्यूम यह समझता था कि वह देश का किसी प्रकार का कल्याण कर रहा है तो यही कहना होगा कि वह बहुत ही सामान्य बुद्धि और अनुभव का व्यक्ति था। हम तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही समझते हैं कि जैसे सन् १८८३ में अलीगढ़ आन्दोलन मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध खड़ा करने के लिए किया गया था, वैसे ही हिन्दुओं में एक ऐसी श्रेणी निर्माण करने का यत्न किया गया, जो आने वाले दीर्घकाल के लिए हिन्दुत्व का विरोध करती रहे। हिन्दू होते हुए वह हिन्दू मत का विरोध करने लगे।

यह इस बात से सिद्ध होता है कि प्रथम कांग्रेस का अधिवेशन अंग्रेजी राष्ट्र गीत से आरम्भ हुआ और तीन दिन के विचार-विनिमय के उपरान्त Three times three cheers for her Majesty the Queen Empress से सम्पन्न किया गया।

यह संस्था थी जो इण्डियन नैशनल कांग्रेस के नाम से विख्यात हुई और सन् १८८४ में बम्बई में स्थापित हुई। इसके स्थापित होने में निम्न बातें ध्यान में लाने योग्य हैं—

(१) ह्यूम के पास ऐसे समाचार थे कि हिन्दुस्तान में सहस्रों की संख्या में ऐसे साधु घूम रहे हैं जो सरकार अंग्रेजी के विरुद्ध असंतोष फैला रहे हैं।

(२) ह्यूम चाहता था कि यूनिवर्सिटियों के पढ़े स्नातक उन साधुओं के स्थान पर नेता बन जायें।

(३) ह्यूम के प्रयास को तत्कालीन 'सैक्रेटरी ऑफ स्टेट' तथा वायसराय हिन्द लार्ड डफरिन का आशीर्वाद प्राप्त था। सैक्रेटरी ऑफ स्टेट और वायसराय में इस विषय पर परामर्श हुआ था।

(४) यह निश्चय था कि कांग्रेस के अधिवेशनों में केवल अंग्रेजी पढ़े-लिखे ही डैलिगेट बन सकते थे।

(५) यह निश्चय हुआ था कि कांग्रेस के प्रत्येक दस डैलिगेटों में दो मुसलमान अवश्य होंगे। (यह उस काल की सरकारी नीति का प्रतिबिम्ब ही था जो मुसलमानों को आगे लाना चाहती थी।)

(६) कांग्रेस अधिवेशन (सन् १९१७-१८ तक) अंग्रेजी कौमी गीत—God save the king से आरम्भ हुआ करता था और—Three cheers for the king of England & Emperor of India से समाप्त होता था।

इन विशेषताओं के ही परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि कांग्रेस हिन्दुस्तान में हिन्दुत्व के मार्ग में बाधा बनकर खड़ी हुई है।

यह शिक्षा क्या थी? तनिक इसका दिग्दर्शन करा दिया जाये तो ठीक रहेगा। प्रत्येक स्कूल-कॉलेज के पढ़े-लिखे के मस्तिष्क में यह बैठा दिया जाता है कि—

(१) हिन्दू आर्यों की सन्तान हैं और वे इस हिन्दुस्तान के रहने वाले नहीं हैं। वे कहीं बाहर से आये हैं और यहां के आदिवासियों को मार-मारकर तथा उनको जंगलों में भगाकर उनके नगरों और सुन्दर हरे-भरे मैदानों में स्वयं रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हिन्दुओं के देवी-देवता पत्थर की मूर्तियां हैं। ये बुतपरस्त हिन्दू महा-मूर्ख और अनपढ़ हैं।

(३) हिन्दुओं का कोई इतिहास नहीं। हिन्दुस्तान का इतिहास अशोक के काल से आरम्भ होता है।

(४) राम, कृष्ण आदि की बातें झूठे किस्से-कहानियां हैं।

(५) हिन्दुओं में जात-पांत के बन्धन घृणा योग्य हैं।

(६) वेद, जो हिन्दुओं की सर्वमान्य पूज्य पुस्तक हैं, गड़रियों के गीतों से भरी पड़ी हैं।

(७) हिन्दू सदा से दास रहे हैं —कभी शकों के, कभी हूणों के, कभी कुशाणों के और कभी पठानों, तुर्कों और मुगलों के।

(८) रामायण तथा महाभारत काल्पनिक किस्से-कहानियां हैं।

इस प्रकार की बातें हिन्दू बच्चों को सरकारी शिक्षा से पढ़ाई जाती थीं। और इस शिक्षा का प्रभाव प्राय: अंग्रेजी पढ़े-लिखों पर होता था। सामान्य लोगों की बात छोड़ भी दी जाये तो भी इसका प्रभाव महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, ब्रह्मसमाज के नेता केशवचन्द्र सेन तथा देश और जाति के अन्य नेताओं पर बहुत गहरा हुआ था।

महात्मा गांधी 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीता राम' का भजन गाते हुए भी मानते थे कि रामायण और महाभारत सत्य कहानियां नहीं हैं। ये केवल मानसिक संघर्ष का अलंकार रूप में वर्णन हैं।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के लिए भारत का इतिहास सिन्ध, मुहञ्जोदड़ो और हड़प्पा से आरम्भ होता है। श्री नेहरू अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में लिखते हैं —

The Indus Valley civilization, of which impressive remains have been discovered at Mohenjodaro in Sind and at Harappa in the Western Punjab, is the earliest picture that we have of India's past.

J. L. Nehru, '*Discovery of India*', (Ist Edition 1946), Page 66

अर्थ है—सिन्धु घाटी की सभ्यता, जिसके प्रभावी अवशेष मुहञ्जोदड़ो और हड़प्पा पश्चिमी पंजाब में मिले हैं, सबसे प्राचीन तस्वीर हैं, जो प्राचीन भारत की मिली हैं।

इन दो पंक्तियों में नेहरूजी यह कह रहे हैं कि वह सभ्यता सबसे पुरानी है। यदि जो कुछ वहां की खुदाई करने वालों ने कहा है, उसे सत्य मान भी लें तो वह, जिसकी कोई भाषा नहीं थी, टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों से कुछ संकेत मिले हैं, परन्तु अभी तक पता नहीं चल सका कि वे क्या हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत के उस काल में, जिसकी वहां कथा कही गयी है, सिन्ध में एक मलेच्छ राजा का उल्लेख मिलता है। उस राजा का नाम जयद्रथ था, जो दुर्योधन की ओर से युद्ध में लड़ने आया था और अर्जुन के हाथों मारा गया था।

उसे मलेच्छ राजा इस कारण कहा गया है क्योंकि उनकी कोई सभ्य भाषा नहीं थी। वेद उससे बहुत पुराने थे और वेद की भाषा मुहञ्जोदड़ो की भाषा से अधिक अर्थयुक्त एवं सुव्यवस्थित है। उसी काल के लिखे गये महाभारत काव्य की भाषा अति सुव्यवस्थित है।

इस प्रकार भारत की प्राचीन सभ्यता और वैभव से दूर फेंके गये हैं हिन्दुस्तान के अंग्रेजी पढ़े-लिखे, ऐसे शिक्षितों को जिनको अंग्रेजी पढ़ा-लिखा हिन्दुस्तानी आदर तथा मान की दृष्टि से देखता है।

महात्मा गांधी के विषय में यह कहा जाता है कि जब वह इंग्लैण्ड में थे, तब किसी अंग्रेज ने उनसे पूछ लिया, 'भगवद्गीता में क्या लिखा है?'

महात्माजी उस अंग्रेज का मुख देखते रह गये। उसी सायंकाल वे एक पुस्तकों की दुकान से श्रीमती ऐनिबीसेण्ट का भगवद्गीता का अंग्रेजी में अनुवाद लाकर पढ़ने लगे थे।

हमारा यह सब लिखने का अभिप्राय यह है कि इस सरकारी शिक्षा द्वारा शिक्षित हिन्दू नवयुवकों को 'हिन्दुत्व' से सर्वथा दूर ले जाकर पटक दिया गया है।

कहीं एक सर विलियम जोन्स रायल एशियाटिक सोसायटी के सेक्रेटरी थे। वे इतिहास के विद्वान् भी नहीं थे। उन्होंने सन् १७९३ में सोसायटी की एक सभा में यह कह दिया कि मैगस्थनीज भारत में चन्द्रगुप्त के राज्य में आया था और उसके दरबार में रहा था। सिकन्दर का तिथि-काल ईसा से जोड़ा गया है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त और सिकन्दर समकालीन मान लिये गये। भारतीय तिथि-काल से यह सर्वथा अशुद्ध है।

इसपर भी भारतवर्ष के इतिहासज्ञ इस अशुद्ध तिथि-काल को अंग-संग लगाये हुए हैं।

इसी प्रकार चन्द्रगुप्त से पहले भारत कहीं था ही नहीं, ऐसा अंग्रेजी पढ़े-लिखे मानते हैं।

कहे जाने वाले चन्द्रगुप्त के महामात्य के विषय में बाणभट्ट 'कादम्बरी' में लिखते हैं कि वह अति क्रूर स्वभाव का व्यक्ति था, परन्तु अंग्रेजी पढ़े-लिखे उसको एक महान् व्यक्ति मान काल्पनिक कहानियां उसके विषय में लिखते रहते हैं। वे हिन्दुत्व के आचार-विचार से सर्वथा अनभिज्ञ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ४ :

हिन्दुस्तान में अंग्रेजी सरकार ने अपने राज्य को सुदृढ़ करने के लिए यहां एक स्थाई वैमनस्य उत्पन्न कर दिया है। सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में विजयी हुई अंग्रेजी सरकार ने पहले तो यह समझा कि सन् १८५७ की घटना मुसलमानों के कारण हुई है और उन्होंने सन् १८५७ के उपरान्त कुछ काल तक मुसलमानों को कुचल डालने का यत्न किया। परन्तु शीघ्र ही, ज्यों-ज्यों उस संग्राम की पृष्ठभूमि का ज्ञान होता गया, देश के अंग्रेज शासकों को समझ आता गया कि इस देश में बसी हुई हिन्दू समाज अति बुद्धिशील लोगों का समूह है और जबतक यह हिन्दू समाज अपने विचारों पर दृढ़ है, इस देश में अंग्रेजी शासन जड़ नहीं पकड़ सकता। अतः सबसे पहले यू० पी०, जिसे उस समय संयुक्त प्रान्त कहते थे, के गवर्नर की कौंसिल के एक कौंसिलर ने सन् १८६४ में अंग्रेजी पार्लियामेंट को यह सुझाव दिया कि यदि इस देश पर दीर्घकाल तक राज्य करना है तो हिन्दुओं का पल्ला छोड़कर मुसलमानों का दामन पकड़ना चाहिए। इसपर बुद्धिमान अंग्रेज शासकों को भी ऐसा ही समझ आया और उन्होंने मुसलमानों को उभारकर हिन्दुओं के विरुद्ध करना आरम्भ कर दिया। इस दिशा में कार्य करते हुए अंग्रेजी सरकार ने अलीगढ़ में इस्लामिया कॉलेज की नींव रखी।

अलीगढ़ में इस्लामिया कॉलेज का इतिहास सन् १८७० से आरम्भ होता है। इस वर्ष में सैयद अहमद, जो पीछे 'सर' की उपाधि से विभूषित किये गये, इंग्लैण्ड गये थे। सैयद साहब की वहां बहुत आवभगत की गयी और जब वह हिन्दुस्तान लौटे तो इनके मस्तिष्क में इस्लामी जमायत को उन्नत करने का बीज पड़ चुका था। यूं तो यह महानुभाव पहले भी विशेष बुद्धि रखते थे। इन्होंने विलायत जाने से पहले एक छोटी-सी पुस्तिका 'इस्बावे बगावत ए हिन्द' लिखी थी। उसमें इन्होंने लिखा था कि मुसलमान जमायत अंग्रेजी राज्य की सर्वथा वफादार थी और मूर्ख अंग्रेज शासकों ने दोनों (हिन्दू-मुस्लिम) समुदायों में फूट डलवाने की कोशिश नहीं की। इस पृष्ठभूमि के साथ वह इंग्लैण्ड गये और वहां से भली-भांति सिधाये हुए प्राणी की भांति आये। वहां से सैयद साहब ने अपने एक पत्र में सायंटिफिक सोसायटी को लिखा—

The natives of India, high and low, educated and illiterate, when contrasted with the English in education, manners and uprightness, are as like as a dirty animal is to an able and handsome man.

Qtd. by Pyare Lal in *Mahatma Gandhi*, **The Early Phase, Page 16**

अर्थ है—हिन्दुस्तान के रहनेवाले, धनी-निर्धन, पढ़े-लिखे, अनपढ़ की **जब**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजों से शिक्षा में, व्यवहार में, स्वभाव में तुलना की जाती है तो ऐसे लगते हैं जैसे एक योग्य सुन्दर मनुष्य के सम्मुख एक गंदा जानवर हो।

जब वह हिन्दुस्तान में आया तो उसने एक पत्र निकालना आरम्भ किया—'तहजीब-अल-इखलाक'।

तदनन्तर, उसने सन् १८८५ में अलीगढ़ में ऐंग्लो-ओरिएण्टल कॉलिज चालू किया। इस समय इसने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा कि यह कॉलेज सरकार-हिन्द (अंग्रेजी सरकार) का समर्थक होगा। ऐसा कहा जाता है कि इस कॉलेज के खुलवाने में वायसराय हिन्द ने प्रोत्साहन दिया। यह कॉलेज मुसलमानों के लिए ही था और उनके लाभ के लिए ही खोला गया था।

महात्मा गांधी का जीवनचरित्र लिखने वाले श्री प्यारेलाल लिखते हैं कि आरम्भ में सर सैयद कुछ भी कहें, साम्प्रदायिक नहीं था।

हम समझते हैं कि यह एक कांग्रेसी की भांति मुसलमानों की झूठी खुशामद है। सर सैयद अहमद ने उस समय भी, 'इसबाबे बगावत-ए-हिन्द' पुस्तक अंग्रेज शासकों की दृष्टि में मुसलमानों को उठाने के लिए लिखी थी और उनके पूर्ण जीवन-भर का काम अंग्रेजी सरकार की खुशामद कर मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ खड़ा करना था।

हां, यह महानुभाव अंग्रेजी सरकार की दृष्टि में चढ़ा नहीं था। विलायत जाने पर अंग्रेजी अधिकारियों को यह समझ आने लगा कि उनकी बदली हुई नीति में सैयद साहब सहायक होंगे। उन्होंने उसको उठा गले से लगा लिया और इसे 'सर' की उपाधि से विभूषित कर दिया।

इस सबको लिखने का हमारा अभिप्राय यह है कि मुसलमानों को ऊंचा करना भारत में हिन्दुत्व को पछाड़ने का प्रयास था। अंग्रेज को समझ आ रहा था कि इस्लाम, जो हजरत मुहम्मद साहब के निधन के सवा सौ वर्ष के भीतर अरब के रेगिस्तानों से निकलकर ट्रिपोली, ट्यूनिस, मोरक्को से स्पेन पहुंच गया था, वहां दूसरी ओर पंजाब की पश्चिमी सीमा तक पहुंच गया था, और इन देशों में रहने वालों को मुसलमान बना चुका था, वही इस्लाम भारत में आठवीं शताब्दी में पहुंचकर अठारहवीं शताब्दी तक केवल तीन-चार करोड़ ही मुसलमान बना सका था। उस समय भी हिन्दुस्तान की जनता का यह दसवां भाग मात्र था।

अंग्रेज इस बात को जान यह समझ गया कि हिन्दुस्तान में हिन्दू किसी विशेष मिट्टी का घड़ा हुआ है और इसके खिलाफ सब शक्तियों को एकत्र करने का यत्न करना चाहिए।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में यह बात अंग्रेज के दिमाग में भली-भांति बैठ चुकी थी कि मुसलमानों की सहायता से हिन्दुओं को दबाना चाहिए। नहीं तो हिन्दू संस्कृति इतनी प्रबल है कि यह अंग्रेजी राज्य को ही नहीं, वरन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाई संस्कृति को भी हज्म कर जायेगी। अतः उन्होंने मुसलमानों को अपना मित्र बनाया। इस मित्रता के झूलों में उनको सैयद अहमद मिल गया और उन्होंने इस बबूल के पेड़ को अलीगढ़ में लगा दिया, जिससे इस बबूल के कांटे हिन्दुस्तान में अंग्रेजी सरकार की रक्षा करें और हिन्दुओं को चुभते रहें।

तब से मुस्लिम नवाजी आरम्भ हुई। सन् १९०६ में इसका प्रत्यक्ष रूप प्रकट हुआ। मुसलमानों को विशेष अधिकारयुक्त बनाने के लिए जहां अलीगढ़ को इस्लाम का गढ़ बनाया गया, वहां सन् १८८४ में कांग्रेस में डैलिगेटों में बीस प्रतिशत सुरक्षित स्थान मुसलमानों के लिए बनाना भी उसी नीति का ही एक अंग था। अब पूर्ण हिन्दुस्तान में मुसलमानों के लिए पृथक् स्थान सुरक्षित समझे गये।

सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने 'My Reminiscence' नामक पुस्तक में लिखा है कि जब वे इलाहाबाद कांग्रेस अधिवेशन पर जाने लगे तो हिन्दू डैलिगेट अधिक थे और मुसलमान डैलिगेट मिल नहीं रहे थे। इस कारण उन्होंने छापाखाना के दो मिस्त्रियों को नये सूट पहनवा कर साथ ले लिया।

इस सर ए० ओ० ह्यूम की कांग्रेसी तथा श्री प्यारेलाल बहुत प्रशंसा करते हैं। हम समझते हैं कि यह अंग्रेजी शिक्षा ही उनकी कलम द्वारा बोल रही है। यही कांग्रेस स्थापना दिवस से लेकर आज तक मुसलमानों को आगे लाने में देश और राष्ट्र को पीछे धकेलने का यत्न करती रही है।

अलीगढ़ हलचल को सन् १९०६ में प्रयोग किया गया। इस वर्ष जून मास में सैक्रेटरी ऑफ स्टेट्स फॉर इण्डिया ने वायसराय-ए-हिन्द को लिखा—

Everybody warns us that a new spirit is growing and spreading all over India. Lawrence, Chirol, Sydney Low, all sing the same song : 'You cannot go on governing in the same spirit; you have got to deal with the Congress Party and Congress principles, whatever you may think of them. Be sure that before long Mohammedans will throw in their lot with the Congressmen against you and so on and so forth.'

Qtd. by Pyare Lal in *Mahatma Gandhi*, **The Early Phase, P. 150**

अर्थ है—सब हमें यहां सचेत कर रहे हैं कि हिन्दुस्तान में नयी जान पड़ रही है और भारत भर में फैल रही है। लोरेंस, चिरोल, सिडनी लोउ सब एक ही राग अलाप रहे हैं। तुम हिन्दुस्तान का उसी भाव में शासन नहीं कर सकते, जिसमें अभी तक करते रहे हो। तुम्हें कांग्रेस के सिद्धान्तों से निपटना होगा। तुम्हारे अपने कुछ भी विचार क्यों न हों, विश्वास जानो कि शीघ्र ही मुसलमान अपने आपको कांग्रेस के साथ, हमारे विरुद्ध, सम्मिलित कर लेंगे।

इस मत और राय का ही फल हुआ कि अक्तूबर सन् १९०६ को 'हिज़-हाईनैस'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर आगाखान मुसलमानों का एक डैपुटेशन लेकर लार्ड मिण्टो को मिला और अपनी अर्जी में उन्होंने मांग उपस्थित की कि मुसलमानों को एक पृथक् समुदाय के रूप में प्रातिनिध्य मिले। मुसलमानों को अपनी जनगणना के अनुसार न समझा जाये, वरन् उनको राजनीतिक महत्ता के विचार में लिया जाये।

इसे लार्ड मिण्टो (वायसराय-ए-हिन्द) ने तुरन्त स्वीकार कर लिया और कहा—

I can only say that the Mohammedan community may rest assure that their political rights and interests as a community will be safeguarded by any administrative reorganisation with which I am concerned.

Qtd. by Pyare Lal in *Mahatma Gandhi*, **The Early phase, Page 141**

अर्थ है—मैं यह कह सकता हूं कि मुसलमान समुदाय को इस बात का विश्वास रखना चाहिए कि मुसलमान समुदाय के राजनीतिक अधिकार और उनकी रुचि की रक्षा की जायेगी, जब भी कोई शासकीय सुधार का विचार किया जायेगा।

इस प्रकार अंग्रेज शासक ने हिन्दुस्तान के रहने वालों में मज़हब के नाम पर एक खाई उत्पन्न कर दी।

कांग्रेस तो पहले ही मुसलमानों को विशेष अधिकार देने के लिए तैयार थी। इसने अपनी स्थापना के दिवस से ही मुसलमानों के लिए विशेष प्रातिनिध्य पहले ही दे रखा था।

यदि इसने सन् १९०६ में ही सरकार की इस बात को स्वीकार नहीं किया तो इसलिए कि देश में सन् १९०६ का वातावरण ऐसा था कि कांग्रेस यदि यह मानती तो बदनाम हो जाती और कांग्रेस अंग्रेज भक्तों के हाथ से निकलकर तिलक इत्यादि के हाथ में चली जाती।

सन् १९०६ में कांग्रेस के प्रधान पद के लिए तिलक का नाम लिया जाने लगा तो कांग्रेस पर अधिकार रखने वालों ने इंग्लैण्ड से दादा भाई नौरोजी को बुलाकर उनको प्रधान पद के लिए उपस्थित कर दिया। दोनों दलों, नरम दल और गरम दल, में अन्तर यह था कि सरकार की आलोचना किन शब्दों में की जाये और आलोचना करते हुए किन की निन्दा की जाये।

नरम दल वालों का व्यवहार कांग्रेस के प्रारम्भिक काल से ही यह था कि सरकार अंग्रेजी के गुणानुवाद गाये जायें और फिर नौकरियों, पदवियों इत्यादि के लिए याचना की जाये।

जब तिलक कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे तो उन्होंने अपनी आवाज़ में कांग्रेस से बाहर हो रही राजनीतिक हलचल को दिशा देनी आरम्भ कर दी थी। इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध में तिलक जी सन् १८९८ में बंदी भी बनाये जा चुके थे।

पहले तो नरम दल वालों ने तिलक को कांग्रेस से बाहर रखने का यत्न किया, परन्तु वह महाराष्ट्र में पूना की ओर से डेलिगेट बनकर आते थे, इस कारण उनको सहन किया जाता था। तिलक जी का कांग्रेस अधिवेशनों में भी यह कहना होता था कि जो लोग कांग्रेस से बाहर राजनीतिक आन्दोलन कर रहे हैं, उन्की आवाज़ भी कांग्रेस के मंच से उठाई जाये। यह तत्कालीन कांग्रेसी नहीं चाहते थे। इसमें दो कारण थे। एक तो कांग्रेस के बाहर कार्य करने वाले लोग देश को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध के लिए तैयार करना चाहते थे। दूसरे, वे यह समझते थे कि देश को अंग्रेजों से स्वतन्त्र कराना है।

इसके विपरीत कांग्रेस के नेता यह चाहते थे कि देश में अंग्रेजी राज्य बना रहे। अंग्रेजी राज्य की छत्रछाया के अधीन ही नौकरियां और पदवियां हिन्दुस्तानियों को मिलती रहें।

इस सम्बन्ध में फिरोजशाह मेहता का विचार था कि हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज्य 'Inscrutable dispensations of Providence' [परमात्मा की ओर से अज्ञात कारणों से राहत (सुविधा)] ही है।

रानाडे इसको इतिहास की अनिवार्य करवट मानता था और सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने सन् १९०२ के कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन के प्रधान पद से यह कहा था कि हम हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज्य सदा के लिए चाहते हैं। (We plead for the permanance of British rule in India.)

इसके विरुद्ध तिलक का जयघोष था – 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।' अतः तत्कालीन कांग्रेसी नेताओं को तिलक से भय उत्पन्न हो गया था।

सन् १९०५ में कांग्रेस का बनारस में अधिवेशन हुआ था। उसके प्रधान कृष्ण-गोपाल गोखले थे। वह सरकार अंग्रेजी के अनन्य भक्त थे। वहां तिलक और उनके साथियों ने खुले आम सभा की थी और अपने विचार लोगों को बताये थे।

उस समय देश में स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था और सन् १९०३ में लार्ड कर्ज़न की गालियों के प्रतिकार में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार आरम्भ हो गया था। तिलक इत्यादि न केवल स्वदेशी आन्दोलन को प्रोत्साहन देते थे, वरन् क्रान्तिकारियों को भी देशभक्त समझते थे। देश की आम जनता तिलक की भक्त थी और उच्च पदाधिकारी, तत्कालीन जज और मिलों के मालिक कांग्रेस की नीति को पसन्द करते थे।

इस कारण कांग्रेस को तिलक इत्यादि से भय हो गया था। वह समझ रहे थे कि उनके जो कुछ थोड़े-से साथी सरकारी क्षेत्र के बाहर के हैं, वे भी कहीं नाराज होकर चले न जायें और फिर कांग्रेस तिलकपंथियों के हाथ में आ जायेगी। इससे उनके अपने प्रचार का साधन उनके हाथ से निकल जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणामस्वरूप सरकार की नीति मुसलमानों को पृथक् कौम समझने को पसन्द करते हुए भी इसका समर्थन नहीं हो सका।

सन् १९१६ में तिलक का भय नहीं रहा था। एक तो तिलक जी के अपने व्यवहार में अन्तर आ चुका था। दूसरे, क्रान्तिकारी तथा गरम दल सरकारी दमन नीति से दब चुका था। अतः सन् १९१६ में कांग्रेस ने मुसलमानों का एक पृथक् जाति होना स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार सरकार की नीति जो सन् १८८१ से आरम्भ हुई थी, जिससे मुसलमानों को प्रोत्साहित कर देश की मुख्य जनता के विरुद्ध खड़ा किया जाये, का कांग्रेस ने सन् १९१६ में समर्थन कर दिया।

मुसलमान क्या चाहते थे और यह अलीगढ़ आन्दोलन क्या था? इसका दिग्दर्शन सर सैयद अहमद की पुस्तक 'इसबाबे-ए-बगावत' में प्रकट किया गया था। पीछे इंगलैण्ड से लौटने के उपरान्त तो यह खुलकर हिन्दुओं के विरुद्ध हो गये थे। इस विरोध से उसका मुख्य उद्देश्य सरकार अंग्रेजी से मुसलमानों के लिए विशेष सुविधाएं प्राप्त करना था।

मुसलमानों के सर सैयद अहमद के नेतृत्व में सरकार अंग्रेजी की खुशामद करना, कांग्रेसियों ने अस्वीकार नहीं किया। यह स्वीकारोक्ति सन् १९१६ के उपरान्त और भी उग्र हो गयी।

अभी तक हमने सरकार अंग्रेजी की ओर से उन नीतियों का उल्लेख किया है जिनसे अंग्रेजी अधिकारी यह समझते थे कि वह अपने राज्य की नींव हिन्दुस्तान में सुदृढ़ कर रहे हैं। ये नीति उनके सुदृढ़ शासन और वफादार सेना और पुलिस के अतिरिक्त थी।

वे नीतियां थीं —

(१) मैकाले की शिक्षा नीति;

(२) सर ह्यूम की कांग्रेस की स्थापना;

(३) मुसलमानों को अंग्रेजी शासन का सहायक बनाना।

हम समझते हैं कि ये सब नीतियां हिन्दुत्व की हत्या के लिए ही चालू की गयी थीं। किसी-न-किसी प्रकार अंग्रेज शासकों के मस्तिष्क में यह बात बैठ गयी थी कि हिन्दू जाति अंग्रेजी शासन से प्रसन्न नहीं है और किसी भी दिन यह उसे उखाड़ देश से बाहर धकेल देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

स्वराज्य से पूर्व—२

परन्तु हिन्दुत्व अथवा भारतीयता ने अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए निरन्तर यत्न किया है। आदिकाल से ही इस जाति ने घोर संघर्ष करते हुए अपना अस्तित्व बचाये रखा था। जहां मिस्र, यूनान, रोम और अब चीन तथा जापान की पुरानी सभ्यताएं निःशेष हो गयी हैं अथवा हो रही प्रतीत होती हैं, वहां हिन्दू आज भी प्राचीन सिद्धान्तों को मानता है तथा उनपर मनन करता है। इसमें कारण यह है कि हिन्दुत्व के मूल सिद्धान्त न्याययुक्त और सत्य सिद्धान्तों पर आधारित हैं। यह उन देशों में, जहां की संस्कृति मिट गयी है, ऐसा नहीं।

यहां दो शब्द सभ्यता और संस्कृति के विषय में लिख दें तो उचित ही होगा। संस्कृति आत्मा और बुद्धि का विषय होती है और सभ्यता शरीर, इन्द्रियों तथा मन का विषय है।

मानव शरीर में सक्रिय अंग हैं—हाथ, पांव, इन्द्रियां, मन, बुद्धि और जीवात्मा। इनमें शरीर, इन्द्रियों तथा मन के कर्म करने की विधि एक प्रकार की है और बुद्धि एवं जीवात्मा के कर्म दूसरी प्रकार से होते हैं।

वे कार्य जो शरीर, इन्द्रियां और मन के हैं और जिनमें बुद्धि का समावेश नहीं, वे सभ्यता का अंग कहे जाते हैं। इनके विपरीत जिन कर्मों से बुद्धि तथा जीवात्मा के संस्कारों का सम्बन्ध हो, वे संस्कृति कहाते हैं।

उदाहरण के रूप में एक व्यक्ति यह मानता है कि पेट भर अन्न खाने को चाहिए और तबतक खाते जाना चाहिए जबतक भोजन स्वादिष्ट मिले और जबतक पेट भर न जाये। यह व्यक्ति सभ्यता के अधीन कार्य करता कहा जाता है। इस चलन को पशुओं की सभ्यता भी कहा जाता है। इसके विपरीत एक अन्य व्यक्ति स्वास्थ्य-प्रद भोजन और उतनी मात्रा में लेता है, जितना वह पचा सके। यह व्यक्ति संस्कृति के अधीन कार्य कर रहा कहा जायेगा।

एक अन्य उदाहरण ले सकते हैं। एक व्यक्ति राम-सीता और लक्ष्मण की मूर्ति की पूजा करता है। इस कारण कि उसके माता-पिता अथवा अन्य पूज्य व्यक्ति इनकी पूजा करते थे। यह व्यक्ति सभ्यता का पुजारी कहा जायेगा। दूसरा व्यक्ति राम और सीता की मूर्ति पर फूल चढ़ाता है, परन्तु इस कारण कि उसने इतिहास में पढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि राम ने भारत की संस्कृति की रक्षा में रावण से युद्ध किया था। पहला व्यक्ति तो केवल मन के संस्कार के अधीन कार्य करता है और दूसरे प्रकार का व्यक्ति बुद्धि तथा ज्ञान का प्रयोग करते हुए संस्कृति की बात करता कहा जायेगा।

अत: सांस्कृतिक मान्यताओं में जीवात्मा और बुद्धि का दर्शन होता है और सभ्यता में केवल देखा-देखी अथवा लोभ, मोह, स्वाद इत्यादि बातें प्रेरक होती हैं।

सांस्कृतिक मान्यताएं मिथ्या अथवा भ्रम सिद्ध होने पर छोड़ दी जाती हैं और सभ्यता बुद्धि से असम्बन्धित होने के कारण यह एक बार बनी तो फिर विवश कर ही बदली जा सकती है अथवा मरने पर बदलती है।

इसी कारण हम कहते हैं कि यदि हिन्दुत्व की मान्यताएं आदिकाल से अब तक चली आती हैं तो इस कारण कि जब-जब भी किसी ने बुद्धि में इनकी परीक्षा की है तो ये बुद्धि में सत्य, उपकारी और लाभकारी सिद्ध हुई हैं। हिन्दुत्व की कुछ मान्यताएं, जो जीवात्मा का और बुद्धि का विषय हैं, हमने प्राक्कथन में बताई हैं।

उनमें एक मान्यता है—परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकारना। यह युक्ति से सिद्ध मान्यता है। यह हम स्पष्ट कर चुके हैं। इसी प्रकार अन्य मान्यताएं भी तर्क से सत्य, हितकर, न्यायोचित सिद्ध की जा सकती हैं।

इन मान्यताओं की रक्षा आदिकाल से बुद्धिमान लोग करते आये हैं। इनका एक संक्षिप्त वर्णन हमने उपोद्घात में दिया भी है।

अब हम बताना चाहते हैं कि अंग्रेजी काल में हिन्दुत्व की रक्षा के लिए कौन-कौन-से प्रयास किये गये और उनके क्या परिणाम हुए हैं।

पूर्व इसके कि हम हिन्दुत्व के पक्ष में इस काल में किये गये प्रयासों के विषय में बतायें कि कैसे किये गये और उनका क्या परिणाम हुआ है, हम इस बात को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि कही जाने वाली भारतीय अथवा हिन्दू समाज अब पिछले कुछ सहस्र वर्षों से संस्कृति को छोड़ सभ्यता को मुख्य मानने लगी है। इस कारण जितने वेग से एक श्रेष्ठ संस्कृति को ठीक मार्ग पर लाने के लिए लगने चाहिए, उतने में हिन्दू समाज सन्मार्ग पर नहीं आ रही। इसपर भी यदि हिन्दू जीवित हैं तो इस कारण कि हिन्दुत्व की मान्यताएं श्रेष्ठ हैं और जब-जब हिन्दू समाज के घटक अथवा समुदाय उन मान्यताओं पर निष्ठा लाते हैं तो वे पुन: हरी-भरी हो जाती हैं और बदलती ऋतुओं का प्रभाव हीन हो जाता है।

हिन्दू समाज में शुद्धता की बहुत महिमा है। परन्तु शुद्धता को जाति-पांति अथवा जन्मजात मानने से छूआछूत का रोग उत्पन्न हो गया है और यह हिन्दू मान्यताओं के ह्रास का कारण हो रहा है।

इसी प्रकार अपने धर्मात्मा शौर्यवान पूर्वजों के चित्रों तथा मूर्तियों पर पुष्प-मालाएं चढ़ाना एक बुद्धियुक्त कार्य है। परन्तु उनके चित्रों अथवा पत्थर की मूर्तियों को ही परमात्मा मान, उनको सुख-सुविधा देने वाला समझने लगना ह्रास का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण हो रहा है। जब महर्षि स्वामी दयानन्द मूर्तिपूजा का खण्डन किया करते थे, वे कहा करते थे कि राम अथवा कृष्ण धर्मात्मा, शौर्यवान् तथा लोक-कल्याण करने वाले व्यक्ति थे, परन्तु उनकी मूर्तियों अथवा चित्रों को तिलक-केसर लगा, वस्त्र-भूषण पहिना, उनको पंखा कर तथा भोग लगा पूजन करना सभ्यता के पीछे भागना है। ये बातें ह्रास का कारण बन रही हैं।

ये और इसी प्रकार के अन्य दोष समाज में आ जाने से सत्य, शाश्वत संस्कृति मानने वाले भी ह्रास को प्राप्त हो रहे प्रतीत होते हैं।

इन दोषों को देखकर अथवा न देखकर भी अंग्रेजी राज्यकाल में हिन्दुत्व पर उपस्थित संकट से पार पाने के प्रयास किये गये हैं।

(१) इनमें से पहला प्रयत्न था —राजा राममोहन राय का। उन्होंने ईसाइयों को हिन्दू देवी-देवताओं को हंसी उड़ाते देखा तो वह हिन्दू समाज को इन मूर्ति इत्यादि की पूजा से उठाकर उपनिषदों की शिक्षा पर लाने का यत्न करने लगे। ईसाई पादरी हिन्दू स्त्रियों को सती होता देख हिन्दू समाज को क्रूर, निर्दयी और असभ्य कहते थे। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा का विरोध करना आरम्भ कर दिया तथा साथ ही, हिन्दुओं में घुस आयी अन्य बुराइयों को रोकने की प्रेरणा देने लगे।

यह प्रयास राजा साहब ने कम्पनी के राज्य में ही आरम्भ कर दिया था। उन्होंने कलकत्ता में धर्मसभा के नाम से एक संस्था बनाई और उसमें उपनिषदों का प्रचार करने लगे।

उपनिषदों में अध्यात्म की शिक्षा तो थी ही। परन्तु उसमें सामाजिक व्यवहार के विषय में कुछ नहीं है। अतः राजा राममोहन राय धर्म की स्थापना तो उससे करते थे, परन्तु सामाजिक सुधार वह यूरोपियन सभ्यता को आदर्श मान हिन्दुओं के समक्ष उपस्थित करते थे। परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मसमाज में लोग उपनिषद् तो भूल गये, परन्तु वे अंग्रेजी राज्य के भक्त बन गये।

धर्मसभा स्थापित हुई थी सन् १८१५ में। राजा राममोहन राय की मृत्यु के उपरान्त सन् १८३५ में यह ब्रह्मसमाज में बदली और केशवचन्द्र सेन सन् १८७०-७१ में बाइबल को धर्मग्रन्थ मानने लगे थे। वे उपनिषद् से तो अनभिज्ञ थे, परन्तु बाइबल के हवाले देते थे।

अतः अंग्रेजी शासन काल से हिन्दुत्व की रक्षा का प्रथम प्रयास धीरे-धीरे निस्तेज हो गया।

(२) हिन्दुत्व की रक्षा का दूसरा प्रयास सन् १८५७ का स्वतन्त्रता संग्राम था। इसके मूल में तांत्या टोपे, कंवरसिंह, रानी लक्ष्मीबाई और कुछ सरदार तथा पदच्युत राजा ही थे। यह आन्दोलन आरम्भ में हिन्दू ही था। परन्तु क्योंकि इसका क्षेत्र सेना था और सेना में हिन्दू-मुसलमान दो कौमों के सैनिक थे, इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण मुसलमानों को साथ लेने का प्रयास किया गया। इसके लिए दिल्ली के अन्तिम मुगल सम्राट् को इसमें सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया गया। बहादुर शाह माना परन्तु इस शर्त पर कि उसको ही हिन्दुस्तान का बादशाह स्वीकार किया जायेगा। इससे मुसलमान सैनिकों को इस संग्राम में सम्मिलित होने को प्रोत्साहन मिला।

हम समझते हैं कि इस संग्राम में यही सबसे दुर्बल स्थान था। कठिनाई यह थी कि अंग्रेज सेना में विद्रोह फैलाने के लिए हिन्दू सैनिकों के साथ मुसलमान सैनिकों को लेना आवश्यक था।

अंग्रेजी सेना में सिक्ख सैनिक भी थे। उनको भी इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया गया। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया और उनका इसमें सम्मिलित न होना भी इस संग्राम का दुर्बल अंग बन गया।

मुसलमान विद्रोह में सम्मिलित हुए तो दुर्बलता का कारण बने। यह इस कारण कि हिन्दुस्तानी पक्ष की ओर से बहुत-सी खराबियां इन मुसलमान सैनिकों ने ही की थीं। जहां-जहां मुसलमान सैनिक अधिक संख्या में इस संघर्ष में सम्मिलित हुए वहां अनियमित कार्यवाई, अनुशासन भंग और अपने ही पक्ष से दगा अधिक हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जहां-जहां हिन्दुस्तान का पक्ष विजयी होता प्रतीत हुआ, वहां इन मुसलमानों के सम्मिलित होने से शान्तिव्यवस्था स्थापित करने में कठिनाई हुई।

सिक्खों का इस संग्राम में हिन्दुस्तान की ओर सम्मिलित न होना पराजय में एक अन्य कारण हुआ। वे अंग्रेज पक्ष की ओर से लड़े। इससे यह कहा जा सकता है कि युद्ध की नीति में दोष था। कदाचित् सैनिक संघर्ष उपयुक्त नहीं था।

कुछ भी हो, सन् १८५७ का प्रयास असफल हुआ और इसकी प्रतिक्रिया बहुत प्रबल हुई। अंग्रेज ने जो बदला लिया वह रोमांचकारी था। इससे हिन्दुत्व के पक्ष को अपार हानि पहुंची।

इस संग्राम के एक द्रष्टा स्वामी दयानन्द भी थे। उनके मन में भी एक प्रतिक्रिया जागी और वह प्रतिक्रिया स्वामीजी ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिख दी। उनका विचार था कि देश की सामान्य जनता इस युद्ध में सम्मिलित नहीं थी। कारण यह कि न तो उनको राजनीति की शिक्षा थी, न ही युद्ध करने वालों ने इनसे सहायता ली। जनता ने भी युद्ध में सहायता नहीं की। सहायता लेने की आवश्यकता भी नहीं समझी गयी।

सन् १८५७ का स्वतंत्रता संग्राम असफल होने के दिनों में स्वामी दयानन्द अपने मोक्ष प्राप्ति की तैयारी को छोड़ ज्ञान की खोज में लगे हुए थे। इस ज्ञान की प्राप्ति में वह यह भी विचार करने लगे कि इस संग्राम में असफलता में क्या कारण थे और उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है। इस ज्ञान की खोज में स्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी को एक ऐसे गुरु मिले जो इस संग्राम के संचालकों के सम्पर्क में थे। स्वामी विरजानन्द के विषय में यह ज्ञात हुआ है कि वह तांत्या टोपे इत्यादि संग्राम के नेताओं के सम्पर्क में थे।

स्वामी विरजानन्द चक्षुविहीन और वृद्ध व्यक्ति थे। वे अपने मन की बात कर नहीं सकते थे। जब स्वामी दयानन्द उनके पास विद्याध्ययन करने के लिए आये तो उनको समझ आया कि यह इस काम के लिए उपयुक्त शिष्य है।

(३) हिन्दुत्व की रक्षा का तीसरा प्रयोग आरम्भ हो गया। दो वर्ष में ही स्वामी विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द को कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण कर दिया। स्वामी जी ने अपना कार्य भगवद्गीता की कथा से आरम्भ किया। तत्पश्चात् हिन्दुओं की बुराइयों को दूर करने में लग गये। मूर्तिपूजा, जन्म से छूआछूत, स्त्रियों से दुर्व्यवहार, विधवाओं के कष्ट का निवारण इत्यादि में वह लग गये। अपने काम में भगवद्-गीता से वेद का आश्रय उनको अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। इसमें कारण यह था कि गीता की भाषा और शैली से वह अपना कार्य भली प्रकार नहीं कर सकते थे। गीता में परमात्मा के लिए 'मम्' 'मया' शब्द के बार-बार आने से वह सब कुछ समझा नहीं सकते थे, जो वह हिन्दू समाज में प्रचलित करना चाहते थे। गीता से मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं हो सकता था। वैसे गीता को वह एक अद्वितीय प्रवचन मानते थे, परन्तु भाषा और कहने की शैली में दोष था। उन्होंने वेदाश्रय लिया और पीछे अपना एक ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश लिख अपना उद्देश्य सिद्ध करना चाहा।

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति सत्यार्थप्रकाश को खण्डन-मण्डन का ग्रन्थ समझ उसको त्याज्य मानते हैं, परन्तु वास्तव में वह पुस्तक हिन्दू समाज में क्रान्ति उत्पन्न करने वाली है। हिन्दुओं की बुराइयों को दूर कर हिन्दुत्व की श्रेष्ठतम परिभाषा उपस्थित कर स्वतंत्रता के लिए यह एक वृहत् प्रयास था। जिस भी बुद्धिमान ने वह पुस्तक पढ़ी है, वह देश और जाति का निष्ठावान् भक्त बने बिना नहीं रह सका।

स्वामीजी, जब-जब भी अवसर मिलता था, अपने देश में अपने स्वराज्य की महिमा गाया करते थे। उनकी इस विषय में नीति यह थी कि हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश में एक बार देश की संस्कृति के लिए लगन और श्रद्धा और उत्पन्न की जाये तो वह स्वतंत्र हुए बिना नहीं रह सकता।

स्वामीजी का यह विचार था कि देश के लम्बे काल तक दासता का कारण देश में ब्राह्मण वर्ग का शून्य हो जाना था। जन्म के ब्राह्मण तो देश में बहुत थे, परन्तु यजमान के भोजन और दो टका दक्षिणा के लिए अपने को बेच देने वाले ही थे वे।

अतएव स्वामी दयानन्द का प्रयास देशवासियों की शिक्षा में सुधार लाना था। जहां-जहां भी उसका वश चला, वह व्याख्यान देते थे और पाठशालाएं खुलवाते रहते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीजी की योजना को लाहौर के कुछ सज्जनों ने समझा और उस दिशा में यत्न करने लगे। स्वामी दयानन्द के कार्य को जारी रखने वाली संस्था आर्य-समाज स्थापित हुई, परन्तु कार्य स्वामीजी के देहान्त के पीछे ही आरम्भ हो सका।

इस कार्य में भी एक कठिनाई उपस्थित हुई। स्वामीजी के कार्य के उत्तराधिकारी प्राय: अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे और जब शिक्षा-कार्य आरम्भ हुआ तो परस्पर लड़ पड़े।

दो विचार के लोग थे। एक तो यह चाहते थे कि सरकारी शिक्षा को चिमटे से भी न छूआ जाये और वेदशास्त्रों के ज्ञाता निर्माण किये जायें।

दूसरे यह समझते थे कि शिक्षा का रूप सरकारी स्कूल-कॉलिजों का ही रखा जाये। विश्वविद्यालय से भी सम्बन्ध रखा जाये, परन्तु सरकारी आवरण में हिन्दुत्व की शिक्षा दी जाये।

दोनों पक्षों में किसी प्रकार का समन्वय नहीं हो सका। परिणामस्वरूप आर्य-समाज की शक्ति बंट गयी। इसके अतिरिक्त परस्पर झगड़ने से शक्ति का ह्रास भी हुआ।

कॉलेज वालों का भ्रम निवारण हुआ सन् १९०७ में जब स्कूल-कॉलेज पर लाखों व्यय हो चुके थे। सरकार की दमन नीति चली और संचालक डर गये और अपनी नीति बदलने पर विवश हो गये। कम-से-कम उसे नरम करना पड़ा।

अन्यथा स्वामीजी के ग्रन्थों में महान् शक्ति थी। एक बार श्री रानाडे सत्यार्थप्रकाश पढ़ रहे थे तो उनके एक मित्र ने पूछा था कि यह क्या है। इसपर श्री रानाडे ने कहा था, 'मैं इसे पढ़कर अपने में देशभक्ति का संचार किया करता हूं।'

दूसरे पक्ष के लोग, जो अपनी शिक्षा पद्धति को सरकारी पद्धति से स्वतंत्र रखना चाहते थे, वे भी अनुभवहीनता के कारण मिथ्या मार्ग पर चल पड़े। वे महात्मा गांधी के मार्ग का अनुकरण करने लगे। आर्यसमाज के इस विभाग के नेता स्वामी श्रद्धानन्द, जो पहले महात्मा मुंशीराम के नाम से विख्यात थे, कांग्रेस के आन्दोलन में सम्मिलित हो गये।

कांग्रेस की नीति में दोष संक्षेप में हम बता चुके हैं। यह हिन्दुत्व की धारा के अनुरूप नहीं थी। अंग्रेजी की शिक्षा में सांस्कृतिक आधार तो था नहीं। इस कारण इन गुरुकुलों के पढ़े-लिखों की दशा उस जलपोत की हो गयी जो दिशा-दर्शन यंत्र न रखता हुआ दूसरे जलपोतों को देख मार्ग टटोलता हो।

इसी कारण जब एक बार गांधीजी गुरुकुल पहुंचे तो स्वामी श्रद्धानन्दजी ने गांधीजी को महात्मा की उपाधि से विभूषित कर दिया। यह नाम अनुचित नहीं था। परन्तु तत्कालीन हिन्दू समाज में महात्मा शब्द से यह भी समझा जाता था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि महात्मा बुद्धिमान् और बुद्धि से दिखाये मार्ग पर आचरण करने वाला होता है।

स्वामी श्रद्धानन्दजी ने कदाचित् गांधीजी में महात्मापन यही देखा था कि वह 'मनसा वाचा कर्मणा' समान व्यवहार रखने वाले हैं। परन्तु जो व्यवहार बुद्धि से परखे बिना स्वीकार किया जाये, भले ही वह मन, वाणी और कर्म में समान हो, वह अशुद्ध, हानिकर और उद्देश्य को नष्ट करने वाला भी हो सकता है। यही गांधी जी में दोष था। गांधीजी जो मन में मानते थे, वही वाणी से कहते थे और वही करते थे। परन्तु वे बुद्धि को हीन समझते थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'गीतामाता' में लिखा है कि मन-भर तर्क, एक तोला-भर श्रद्धा से हीन है। श्रद्धा मन का विषय है, तर्क बुद्धि का विषय है। इस प्रकार गांधीजी कभी भी अपने व्यवहार को बुद्धि की कसौटी पर नहीं परख सके।

स्वामी श्रद्धानन्दजी शीघ्र ही समझ गये कि महात्मा गांधी का मार्ग मिथ्या है। परिणामस्वरूप स्वामी श्रद्धानन्दजी ने सन् १९२४ में गांधी और कांग्रेस का पल्ला छोड़ दिया और हिन्दू महासभा में सम्मिलित हो गये। उन्होंने अपना अधिकांश समय शुद्धि आन्दोलन में लगा दिया था। परन्तु तबतक वह गुरुकुल से पृथक् हो चुके थे और गुरुकुल के स्नातकों ने सन् १९२२,३०,३१ और १९४२ के आन्दोलनों में खुलकर भाग लिया था। अनजाने आर्यसमाज का गुरुकुल विभाग भी गांधी और कांग्रेस की मिथ्या नीति का अनुकरण करता रहा।

जहां तक आर्यसमाज के कॉलेज विभाग का सम्बन्ध था, वह सन् १९०७ के उपरान्त हिन्दुत्व, जिसे हम भारतीयता अथवा वैदिक संस्कृति कहते हैं, से बहुत दूर चला गया था। देश का कार्य करने वाले तो डी० ए० वी० कॉलेज में भी उत्पन्न हुए, परन्तु वे कांग्रेस की छत्रछाया में अथवा सरकारी शिक्षा विभाग के बंदीगृह में जो कुछ किया जा सकता था, करते रहे। यहां इतना स्मरण रखना चाहिए कि कांग्रेस में कार्य करने वाले आर्यसमाजी स्कूलों-कॉलेजों से बाहर वाले लोग भी थे। कदाचित् डी० ए० वी० संस्थाओं से बहुत अधिक थे।

(४) एक चौथा प्रयास हिन्दू संस्कृति की रक्षा का आरम्भ हुआ स्वामी दयानन्द जी के बीज से, जो उन्होंने श्यामजी कृष्ण वर्मा के मन में डाला। सन् १८७३ के लगभग जब स्वामीजी दिल्ली से लाहौर को जा रहे थे तो श्यामजी कृष्ण वर्मा स्वामीजी से मिले थे। भेंट गुप्त हुई थी। यह विदित नहीं कि क्या बात हुई। कदाचित् वह बात उस रूप में नहीं हुई होगी जिसमें श्यामजी कृष्ण वर्मा ने कार्य किया। यह हम इस कारण कहते हैं कि स्वामीजी देशवासियों को वेदानुकूल शिक्षा के पक्ष में थे और श्यामजी ने देश की सेवा करनी चाही फ्रांस के क्रान्तिकारियों की नीति से। इतना ही समझ आता है कि स्वामीजी की देश और जातीय धर्म की रक्षा की भावना तो वर्माजी के मन में बीज बन गयी। जो कुछ उन्होंने पीछे किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह परिस्थितियों से विवश होकर किया।

कुछ ऐसा भी सम्भव है कि श्यामजी स्वामीजी से मिलने के पीछे श्री बाल गंगाधर तिलक से मिले थे और उनकी शिक्षा का स्वरूप उनके पीछे के जीवन से प्रकट हुआ।

श्यामजी कृष्ण वर्मा जब श्री विनायक दामोदर सावरकर से मिले तो उनके कार्य का रूप स्थिर हो गया। ये दोनों महानुभाव कट्टर हिन्दू होने के साथ-साथ क्रान्तिकारी विचार के थे।

वीर सावरकर शिक्षा के लिए सन् १९०६ में इंग्लैण्ड गये थे। वहां श्यामजी कृष्ण वर्मा से मिले और फिर भारत को स्वतन्त्र करने के लिए विप्लव खड़ा करने का यत्न होने लगा।

इंग्लैण्ड के कार्य की गूंज भारत में आयी और 'अभिनव भारत' के नाम की क्रान्तिकारी समितियां स्थान-स्थान पर बनने लगीं।

इन समितियों की सहयोगिनी क्रान्तिकारी युगान्तर समितियां बन गयीं। इन समितियों के सदस्यों के मन में लगी हुई देशभक्ति की अग्नि पर लार्ड कर्जन के हिन्दुओं के प्रति दुर्वचनों ने घी का काम किया और पूर्ण देशभर में आग भड़क उठी। स्थान-स्थान पर क्रान्तिकारी समितियां बनने लगीं।

बीसियों फांसी के तख्ते पर चढ़ गये। सैकड़ों बन्दी बनाकर काले पानी भेजे गये और जनमानस में विक्षोभ उत्पन्न हो गया।

इन क्रान्तिकारियों का आतंक अंग्रेजों के मन में बहुत भारी था। यह एक तथ्य है कि लाला लाजपतराय के सन् १९०७ में पकड़े जाने पर लाहौर में सब यूरोपियन भयभीत दो रात के लिए लाहौर किले में चले गये थे और शान्ति न होने पर इंग्लैण्ड चले जाने का विचार करने लगे थे। यद्यपि यह भय अकारण था, इसपर भी था। घटना हिन्दुस्तान में होती थी और इससे आतंक इंग्लैण्ड में फैल जाता था।

क्रान्तिकारी आन्दोलनों का श्रीगणेश हुआ था सन् १८९८ में पूना में और यह चलता रहा सन् १९२८ तक जब भगतसिंह इत्यादि पंजाब के युवकों ने एक पुलिस अधिकारी को गोली से मार डाला था। इसके पीछे भी कुछ घटनाएं होती रहीं, परन्तु गांधीजी ने इसपर ठण्डा पानी डालने का यत्न किया।

यह आन्दोलन हिन्दुत्व की रक्षा का आन्दोलन ही था। इसने हिन्दू युवकों के मन में आग फूंक दी थी। इस आन्दोलन का एक स्रोत था स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज की शिक्षा और दूसरा स्रोत था श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा श्री सावरकर। दोनों मूल से वेदानुयायी और हिन्दू धर्म तथा संस्कृति के भक्त थे।

सन् १९०७ में लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह इकट्ठे पकड़े गये थे और छः मास बन्दी रहने के उपरान्त छूटे थे। दोनों आर्यसमाजी थे। वे व्यक्तिगत हिंसा के स्थान समष्टिगत कार्यवाई में अधिक विश्वास रखते थे। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज की उपज थे। सरदार अजीतसिंह के भाई सरदार किशनसिंह भी सुभाषचन्द्र के पक्ष के कांग्रेसी थे और उनके लड़के ही सरदार भगतसिंह थे जो एक पुलिस अधिकारी की हत्या कर फांसी पा गये थे। वह भी आर्यसमाज की उपज थे।

आर्यसमाज ने एक अन्य विभूति को जन्म दिया। यह थे भाई परमानन्द। भाई जी पहले डी० ए० वी० कॉलेज में प्रोफेसर थे। पीछे जब उनके विचारों का ब्रिटिश सरकार को पता चला तो उनपर राजदण्ड चला।

भाई जी इंग्लैण्ड में पढ़ाई करने गये हुए थे। वहां उनका सम्पर्क सावरकर इत्यादि क्रान्तिकारियों से हुआ। वहीं उन्होंने भारत का इतिहास लिखा था, परन्तु उसकी सूचना भारत सरकार को लग गयी। परिणामस्वरूप इतिहास की वह पाण्डुलिपि खुफिया पुलिस वालों ने चुरा ली। पीछे जब भाई जी पर मुकद्दमा चला तो वह पाण्डुलिपि कचहरी में पेश की गयी। इसपर भाई जी को तीन वर्ष के लिए साठ हजार की जमानत पर छोड़ा गया।

पुन: भाई जी जब अमेरिका से लौटे तो उनपर सेना में बग़ावत फैलाने का आरोप लगा मुकद्दमा किया गया। उसमें भी उनकी इस इतिहास की पुस्तक का प्रमाण देकर आरोप लगाया गया कि यह भयानक क्रान्तिकारी हैं। भाई जी को पहले फांसी का दण्ड हुआ और पीछे आजन्म कैद का दण्ड देकर अण्डमान भेज दिया गया।

सन् १९२१ में वह छूटे तो हिन्दू महासभा में कार्य करने लगे। आर्यसमाज और डी० ए० वी० कॉलेज ने उनसे सम्पर्क विच्छेद कर लिया था।

इसी प्रकार युगान्तर समिति के सदस्य हाथ में भगवद्गीता लिये हुए फांसी चढ़ने के लिए तत्पर रहते थे। इनमें बाबू विपिनचन्द्र पाल तथा श्री अरविंद घोष अग्रणी रहे हैं। श्री अरविंद घोष कट्टर वैदिक धर्मी थे। पीछे वह योगीराज अरविंद के नाम से विख्यात हुए। इनका आश्रम अब भी हिन्दू धर्म का केन्द्र है।

युगान्तर समिति का आन्दोलन पीछे आतंकवादी बन गया और अंग्रेज अफसरों की हत्याएं होती रहीं। इस शृंखला में सन् १९१२ में लार्ड हार्डिंग पर बम्ब की घटना है जिसने हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज्य की जड़ें हिला दी थीं।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का क्या प्रभाव हुआ यह सहज ही समझा जा सकता है। सर्वप्रथम सन् १८९८ में पूना में दो अंग्रेज अफसरों की हत्या की गई और प्रजातान्त्रिक संस्थाओं का श्रीगणेश सन् १९०९ से आरम्भ कर दिया गया।

यह ठीक है कि उस समय, सन् १९०९ के सुधारों में बहुत कम अधिकार जनता को मिले थे, इन सुधारों में मुसलमानों को पृथक् प्रतिनिधित्व भी मिला। परन्तु जो त्याग और तपस्या सन् १८९८ से सन् १९०९ तक आन्दोलनकारियों ने की वह उससे बहुत कम थी जो गांधीजी के आन्दोलन सन् १९२२,२९,३०,३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सन् १९४२ में देशवासियों ने की थी। इसपर भी सुधार हुआ था और जनता के अधिकारों में वृद्धि हुई थी।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि मुट्ठीभर क्रान्तिकारियों ने हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश के शासन को भलीभांति झकझोर दिया था।

उस समय कांग्रेस का बल था पदवियों और सेवाओं में हिन्दुस्तानियों को भाग दिलाने पर। परन्तु मिला शासन सुधार अर्थात् प्रजा को अधिकार। हम समझते हैं कि यह सब कुछ आतंक फैलाने वाली घटनाओं के कारण ही था।

इस काल की स्थिति का वर्णन अपने एक संवाद में वैलेण्टाईन चिरोल इस प्रकार करते हैं—

I detect a very general tendency to ascribe these lavish gifts to the vigorous actions of the extremists. If it had not been for the bombs, we should not have had these boobs, was a remark which roughly summed up the popular opinion in this aspect of the subject.

Qtd. by Dhananjay Keer in '*Savarkar And His Times*'

मि० चिरोल कहते हैं कि मैं समझता हूं कि यह एक सामान्य बात है कि, (हिन्दुस्तान को) उदार उपहार दिये जाते हैं। आतंकवादियों की कार्यवाई के कारण यदि (भारत में) बम्ब-बाजी न होती तो ये न दिये जाते। इस विषय पर यही सम्मति है।

यह पत्र मिस्टर चिरोल ने वम्बई से यहां की बातें जानकर अपने समाचार-पत्र को लिखा था।

लार्ड हार्डिंग पर बम्ब की घटना हुई सन् १९१२ में। साथ ही सन् १९१५-१६ में सेना में बगावत फैलाने का यत्न किया गया। इसका भी प्रभाव हुआ। बम्ब के मुकद्दमे में तीन व्यक्तियों को मृत्युदण्ड हुआ और सैकड़ों सैनिकों को कोर्ट मार्शल में मृत्युदण्ड भी हुआ था। युद्ध काल में आन्दोलन के कारण दण्ड कुछ अधिक लोगों को और गुप्त रूप से दिया गया था। परन्तु इस आन्दोलन से भयभीत हिन्दुस्तान में अंग्रेजी सरकार को प्रान्तों में लगभग आधा स्वराज्य देना पड़ा था। केन्द्र में भी लैजिस्लेटिव कौंसिल के अधिकारों में विस्तार करना पड़ा था। यह सब क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रभाव से ही हुआ था। यह ठीक है कि इन सुधारों से लाभ उठाया अंग्रेजी पढ़े-लिखे सरकार भक्त हिन्दुओं ने और मुसलमानों ने। इन सुधारों का लाभ अनिच्छितों के हाथ में जाने से देश की गति मिथ्या मार्ग पर चल पड़ी थी। परन्तु इसमें दोष उन क्रान्तिकारियों का नहीं था जो हिंसात्मक कार्य करते हुए मारे गये थे, वरन् अधिकारों का प्रयोग करने वाले भ्रमित नेताओं का था। जो व्यवहार देश के पढ़े-लिखे लोगों ने अपनाया, वह शोचनीय था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधार मिले थे सन् १९१९ में। इनपर अमल आरम्भ हुआ सन् १९२० में और उस समय कांग्रेस ने पण्डित मोतीलाल और गांधी जी के नेतृत्व में सुधारों का बहिष्कार किया। बहिष्कार आन्दोलन में पूर्ण जाति का ध्यान लगा दिया न-मिलवर्तन पर। इसके विपरीत सुधारों का प्रयोग किया मुसलमानों ने, सरकारी पिट्ठुओं ने और कुछ अनपढ़ मूर्खों ने। परिणाम यह हुआ कि सुधारों का दुरुपयोग देश में फूट डलवाने, हिन्दू-मुसलमान दंगे कराने और अछूतों को अपनी पृथक् राजनीति निर्माण करने में होने लगा।

गांधी जी के न-मिलवर्तन आन्दोलन से हुए हिन्दू-मुसलमान दंगे।

मालाबार के एक ही दंगे में सहस्रों हिन्दू मारे गये। सबसे भयंकर बात यह हुई कि इन दंगों से जनता की मनोवृत्ति दूषित हुई और लोगों ने भावी सुधारों को मिथ्या दिशा देने में सहायता दी।

सन् १९१९ के शासन सुधारों में प्रान्तों में जनता के प्रतिनिधियों को जातीय निर्माण के कुछ अत्यावश्यक विषयों में प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया था। इन विषयों में सबसे आवश्यक विषय थे शिक्षा, खेतीवाड़ी, दस्तकारी तथा स्थानीय प्रबन्ध (Local Self government)। इन विषयों में जनता को ठीक दिशा में प्रगति करने की प्रेरणा दी जा सकती थी। परन्तु गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के कारण देशभक्त और पढ़े-लिखे लोग प्रान्तीय कौंसिलों में जाने से रोक दिये गये तथा परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय शासन उन लोगों के हाथ में चला गया जो मतांध मुसलमान थे अथवा महास्वार्थी, अपने वेतन भत्तों के लिए देश कल्याण को बेच जाने वाले थे।

हमारा निश्चित मत है कि यदि उस समय निर्माणात्मक कार्य किया जाता तो देश की जो अबुद्ध अवस्था अब है, वह न होती। शिक्षा का विषय जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में दे दिया गया था और यह ही निर्माण का प्रारम्भिक बिन्दु है। उस समय प्रान्तों के शिक्षामन्त्री इकट्ठे बैठकर राष्ट्रीय शिक्षा के लिए योजना बना सकते थे।

खेद इस बात का है कि ये अंग्रेजी पढ़े-लिखे जन्तु अपने देश की विद्या से अनभिज्ञ शोर मचा-मचाकर पूर्ण देश को मिथ्या दिशा में ले गये थे।

महात्मा जी का निर्माण कार्य था सूत कातना। यह बहुत अच्छा होते हुए भी जातीय निर्माण में शिक्षा का स्थानापन्न नहीं हो सकता था।

देश का दुर्भाग्य था कि गांधी जी की तूती बोलती थी। देश में अधिकांश विघटनात्मक कार्य सन् १९२०-३० में ही हुआ। भोली-भाली जनता को बरगलाने का अवसर धूर्तों को मिल गया।

गांधी जी के सन् १९२० से सन् १९२५ तक के असहयोग आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि देश में व्यापक रूप में हिन्दू-मुसलमान दंगे हुए। इनमें अपार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन-जन की हानि हुई। सबसे बुरी बात यह हुई कि देश में हिन्दू-मुसलमान में भेद बढ़ा और साथ ही एक अन्य फूट का स्रोत (अछूतों की हिन्दू समाज से पृथक्ता) का श्रीगणेश हो गया।

जो कुछ प्रभाव क्रान्तिकारियों के त्याग-तपस्या से उत्पन्न हुआ था, वह धूल में मिला दिया गया। अंग्रेज को अपनी फूट नीति में सफलता मिलती देख उनको मनमानी करने में प्रोत्साहन मिला।

क्रान्तिकारी आन्दोलन सन् १८६८ से लेकर सन् १६२८ तक हिन्दुत्व के पक्ष वालों ने ही किया था। प्राय: सब क्रान्तिकारी देश की हिन्दू समाज में से थे, हिन्दुत्व की भावना से ओत-प्रोत थे और देश में देशवासियों के समान अधिकारों के लिए यत्न करते थे। परन्तु जब उनके त्याग-तपस्या के फल मिलने का समय आया तो गांधीजी के आन्दोलनों के कारण शासन पर अधिकार हो गया मतांध मुसलमानों का अथवा देश और जाति के विषय से सर्वथा अनभिज्ञ लोगों का।

क्रान्तिकारी आन्दोलनों की सफलता विफलता में बदल गयी। वैसे इसे भी मैकाले की दूषित शिक्षा का परिणाम ही कहा जा सकता है। गांधी जी के आन्दोलन में कुछ हिन्दू विचार के लोगों का भी सहयोग था। वे गांधी जी के कार्यों से प्रभावित उनके बुद्धिविहीन कर्मों के प्रभाव में और इन मैकाले के भक्तों के जोर-जोर से चिल्लाने के प्रभाव में ठीक दिशा में कार्य करना भूल गये थे।

इस प्रकार हिन्दुत्व का विरोध हुआ और अबुद्ध नास्तिक्य की महिमा में वृद्धि हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय

गांधी आन्दोलन का हिन्दुत्व पर प्रभाव

प्रत्यक्ष में गांधीजी अपने को निष्ठावान् हिन्दू मानते थे। परन्तु इनके पूर्ण व्यवहार और प्रचार से हिन्दुत्व को हानि ही पहुंची है। इस हानि में कारण गांधी जी की नीयत का कदाचित् न हो। ये मरणपर्यन्त अपने को राम-भक्त, गीता का पाठ करने वाले और 'रघुपति राघव राजा राम' की धुन गाने वाले प्रकट करते रहे थे। मरते समय भी इनके मुख से 'राम ! राम !!' के शब्द ही निकले थे। ऐसी स्थिति में यदि इनके व्यवहार के परिणामस्वरूप हिन्दुत्व को हानि पहुंची है तो यह कहना होगा कि गांधी जी हिन्दुत्व समझे ही नहीं थे।

सर्वप्रथम हमें यह देखना होगा कि इस, प्रत्यक्ष रूप में रामभक्त, के व्यवहार से हिन्दुत्व को लाभ पहुंचा था अथवा हानि हुई है। इससे तत्कालीन इतिहास का अवलोकन करना होगा।

जब गांधी जी हिन्दुस्तान के कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हुए, तब हिन्दुस्तान की दशा क्या थी और गांधी जी की मृत्यु के समय सन् १९४८ में देश की क्या दशा थी ?

गांधी जी भारत में सन् १९२३ में श्री गोपालकृष्ण गोखले की प्रेरणा से आये थे। उन दिनों श्री गोखले भारत सरकार के एक वरिष्ठ कर्मचारी थे। वे गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका में मिले और उन्होंने गांधी जी को प्रेरणा दी कि वह हिन्दुस्तान में आकर कार्य करें और वहां प्रभाव निर्माण करें तो फिर अफ्रीका में बसे हिन्दुस्तानियों की अवस्था भी सुधरेगी। दक्षिण अफ्रीका एक ब्रिटिश उपनिवेश था। वहां पर 'होम रूल' स्थापित हो चुका था और ब्रिटेन सरकार दक्षिण अफ्रीका पर सीधा प्रभाव नहीं डाल सकती थी। गांधी जी अफ्रीका के रंगीन नागरिकों का एक डैपुटेशन लेकर इंगलैण्ड भी गये थे। वहां की अवस्था देखकर गांधी जी को भी यही समझ आया कि अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की अवस्था हिन्दुस्तान सरकार के व्यवहार पर निर्भर करती है। अतः आप सन् १९१६ में भारत आ पहुंचे। भारत में आने से पूर्व ही उनकी ख्याति यहां पहुंच चुकी थी।

गांधी जी चाहते थे कि वह 'सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया सोसायटी' के सदस्य बन जायें तो कार्य सुगमता से कर सकेंगे। 'सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया सोसायटी' के अध्यक्ष श्री गोखले ही थे। उन्होंने गांधीजी को राय दी कि वह एक वर्ष तक देश में भ्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें। यहां की अवस्था को देखें और यदि तब वह सोसायटी के सदस्य बनना चाहेंगे, तो बन सकेंगे।

गांधीजी ने यह राय मान ली और वह देश-दर्शन करने लगे। परन्तु इस काल में गोखले जी का देहान्त हो गया और सोसायटी के प्रधान श्रीनिवास शास्त्री हो गये। जब सन् १९१४ में गांधी जी ने सोसायटी का सदस्य बनने का निवेदन किया तो सोसायटी के प्रधान ने अपने साथियों की राय से गांधीजी को सदस्य बनाने से इनकार कर दिया। इस कारण गांधीजी कटी पतंग हो गये और वह कांग्रेस के आश्रय ही अपने कार्य में लग गये।

सन् १९१६ में जब कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हो रहा था तो मुस्लिम लीग का अधिवेशन भी वहीं हो रहा था। उस समय गांधी जी चुपचाप कांग्रेस में बैठे, उसकी गतिविधियों का अध्ययन कर रहे थे। इस वर्ष कांग्रेस ने सरकार द्वारा दिये मुसलमानों को विशेष राजनीतिक अधिकार मान लिये। पण्डित मदनमोहन मालवीय ही एकमात्र नेता थे, जिन्होंने मुसलमानों के लिए विशेष अधिकारों का विरोध किया। मतदान के समय बहुत बड़े मत से यह प्रस्ताव पारित हो गया कि सरकार द्वारा मुसलमानों को दिये विशेषाधिकार कांग्रेस भी स्वीकार करती है। मुस्लिम लीग ने भी अपना अधिवेशन लखनऊ में ही किया था। मिस्टर जिन्ना दोनों संस्थाओं में थे और वह इसमें विरोध नहीं समझते थे।

सन् १९१४ में बम्बई कांग्रेस के अधिवेशन ने एक कमेटी बनाई थी। यह कमेटी युद्ध के पश्चात् भारत शासन में दिये जाने वाले संशोधनों पर विचार करने के लिए बनी थी। उस कमेटी में पांच सदस्यों में मिस्टर जिन्ना, बिहार के श्री मजरूल हक, श्री सीतलवाद, पण्डित मोतीलाल नेहरू और पण्डित मदनमोहन मालवीय थे। पण्डित मोतीलाल ने भावी संविधान में मुसलमानों को विशेष अधिकारों के समर्थन करने का प्रस्ताव किया था। श्री जिन्ना और श्री मजरूल हक ऐसा कहा जाता है कि इन विशेषाधिकारों के पक्ष में नहीं थे। परन्तु पण्डित मोतीलाल और श्री सीतलवाद इसके पक्ष में थे। पण्डित मदनमोहन मालवीय भी इसका विरोध कर रहे थे। इस प्रकार विरोध में एक हिन्दू और दो मुसलमान थे और पक्ष में दो हिन्दू। यह कहा जाता है कि जिन्ना को समझ आया कि यदि वह पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के साथ मुसलमानों के विशेषाधिकारों का विरोध करेगा तो उसकी स्थिति मुस्लिम लीग में दुर्बल हो जायेगी।

मुस्लिम लीग का निर्माण ही इस आधार पर हुआ था कि इसने सरकार से मुसलमानों के लिए विशेष रियायतें प्राप्त करनी हैं। वास्तव में यह संस्था ढाका में हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सरकार के प्रोत्साहन पर ही सन् १९०६ में स्थापित हुई थी।

इस कारण जिन्ना पण्डित मोतीलाल और श्री सीतलवाद के साथ हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मुसलमानों को विशेष अधिकारों का विरोध करने में कमेटी के दो सदस्य रह गये। इनमें भी श्री मजरूल हक कांग्रेस-अधिवेशन के समय इंग्लैण्ड चले गये और मालवीय जी अकेले पीछे थे। सब-कमेटी का प्रस्ताव खुले अधिवेशन में उपस्थित हुआ तो मालवीय जी ने वहां अकेले ही इसका विरोध किया। परन्तु प्रस्ताव लगभग सर्वसम्मति से पारित हो गया।

यह एक वस्तुस्थिति है कि कांग्रेस पर नरम दल वालों का अधिकार बनाये रखने के लिए एक बड़ी संख्या में मुसलमानों को कांग्रेस में लाना आवश्यक था। अन्यथा तिलक के अनुयायी कांग्रेस पर अधिकार जमा लेते। श्री मुहम्मद अली जिन्ना के साथ कुछ मुसलमान कांग्रेस में आये भी थे। इसपर भी मुस्लिम लीग पृथक् बनी रही।

महात्मा गांधी कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में उपस्थित थे, परन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव पर हुए विवाद में भाग नहीं लिया। उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध भी नहीं किया।

सन् १९१६-१७ में चम्पारण में सत्याग्रह कर वहां के किसानां को अपने खेतों पर अधिकार दिलाने में सत्याग्रह करने के कारण गांधीजी की ख्याति देश में फैल रही थी। जब रौलेट कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो हिन्दुस्तान की सरकार क्रान्तिकारियों के विषय में कानून बनाने का यत्न करने लगी। इसपर महात्मा गांधी ने देश भर में इस बन रहे कानून के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया। आन्दोलन में जलसे और जलूसों द्वारा जनता को सरकार की इस कार्यवाही का ज्ञान कराया गया।

गांधीजी का रौलेट एक्ट के विपरीत आन्दोलन ठीक था और इसके लिए जनता ने सहयोग भी बहुत दिया। ज़ब से युद्ध आरम्भ हुआ था, इंग्लैण्ड की सरकार कह रही थी कि हिन्दुस्तानियों को अपने देश का प्रबन्ध करने में अधिक अधिकार दिये जायेंगे, परन्तु शासन सुधार सम्बन्धी कानून बनने से पहले ही रौलेट एक्ट उपस्थित हुआ तो देश की जनता क्रुद्ध हो उठी। रौलेट एक्ट की रूप-रेखा और उसका अभिप्राय जब जनता को बताया गया तो पूर्ण देश में असन्तोष की लहर उठ खड़ी हुई और इस आन्दोलन के कारण गांधीजी की ख्याति और भी बढ़ी।

हम समझते हैं कि जितना कुछ गांधीजी ने रौलेट एक्ट के विरोध में किया था, वह सर्वथा उचित और उपयुक्त था। इससे जन-जागृति ही हुई थी। परन्तु सरकार, विशेष रूप में पंजाब की सरकार ने इस जागृति को भी दबाने का यत्न किया। इसपर जनता का सरकार से संघर्ष हो गया। इसमें सरकार ने पंजाब के कुछ जिलहों में मार्शल-ला लगा दिया। यह एक प्रकार की तानाशाही थी जो सेना द्वारा चलाई गयी थी।

इस समय देश की हिन्दू जनता ने इस आन्दोलन में खुलकर भाग लिया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे अधिक हिन्दू ही पंजाब में पीड़ित हुए। इसपर भी यह ठीक है कि मुसलमान हिन्दुओं के साथ थे। परन्तु इसमें कारण हिन्दुओं से सहानुभूति नहीं थी, प्रत्युत उनकी इंग्लैण्ड के विरुद्ध अपनी शिकायत थी। वह टर्की के विषय में थी।

जब पंजाब में जनता और पुलिस में मुकाबिला हुआ तो पंजाब सरकार ने मार्शला-ला लागू किया और गांधीजी ने आन्दोलन वापस ले लिया। इस आन्दोलन का हिन्दुत्व के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं था। इसपर भी जन-जागृति का हिन्दू समाज पर अधिक प्रभाव हुआ। गांधीजी महात्मा बन गये और हिन्दुओं के नेता हो गये।

इस समय तक गांधीजी की राम-भक्ति जैसी-कैसी भी थी, का प्रभाव हिन्दू जनता पर होने लगा था।

मार्शल-ला के उपरान्त कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ। इस अधिवेशन के प्रधान पण्डित मोतीलाल थे। परन्तु स्वागतकारिणी के अध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द थे। पंजाब की जनता में, विशेष रूप में हिन्दू जनता में अपार उत्साह और उत्तेजना थी। अमृतसर में नेताओं का स्वागत किया जा रहा था। लोग देख रहे थे कि गांधीजी को छोड़कर सब नेताओं से अधिक मान-प्रतिष्ठा श्री बालगंगाधर की हुई थी।

बालगंगाधर तिलक के विरुद्ध तत्कालीन कांग्रेस के अधिकांश नेता थे। गांधीजी भी उनकी नीति को स्वीकार नहीं करते थे। यह उस प्रस्ताव से स्पष्ट है जो नये मिले सुधारों के विषय में गांधीजी ने उपस्थित किया था। उस प्रस्ताव में इंग्लैण्ड के राजा और भारत के सम्राट् का कोटिशः धन्यवाद किया गया था और नये मिले सुधारों को श्रद्धा-भक्ति से प्रयोग करने का आश्वासन था।

यद्यपि पंजाब के हिन्दू प्रस्ताव के स्वरूप से प्रसन्न नहीं थे, परन्तु गांधीजी के आग्रह पर मान गये। प्रस्ताव तिलक इत्यादि के विरोध पर भी पारित हो गया।

इस समय तक गांधीजी का व्यवहार हिन्दू समुदाय के विरुद्ध नहीं था। परन्तु कांग्रेस के अधिवेशन के कुछ दिन उपरान्त ही कांग्रेस का कांटा बदला और गांधी जी भी बदले और लगभग मार्च सन् १९२० के उपरान्त गांधीजी का पूर्ण व्यवहार हिन्दू समुदाय को हानि पहुंचाने वाला बन गया।

इसमें कारण पण्डित मोतीलाल नेहरू और उनके कुछ साथी प्रतीत होते हैं। यह बात कि पण्डित मोतीलाल नेहरू ने गांधीजी को धमकियां देकर इस नये व्यवहार के लिए तैयार किया था, उनके कुछ पत्रों से सिद्ध होता है।

पण्डित मोतीलाल नेहरू ने एक पत्र अपने सुपुत्र पण्डित जवाहरलाल नेहरू को लिखा २७ फरवरी, सन् १९२० को। उन दिनों पण्डित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस द्वारा नियुक्त मार्शल-ला के अत्याचारों की जांच करने की कमेटी के मन्त्री थे और महात्मा गांधी कमेटी के प्रधान थे। पण्डित जवाहरलाल इलाहाबाद में थे। पत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित मोतीलाल ने लिखा—

As for the formulation of Gandhiji's political views, much as I respect him, I am not prepared to accept them simply because they come from him. I have already warned Das that we must be prepared for the big tussle. Gandhiji's going to Delhi for a talk with Shastri, his constant association and general agreement with Malviya are no good omens for our party. Neither are they very good omens for Gandhiji himself. There is such a thing as trusting too much to one's popularity. Mrs. Besant is paying for it, and others have donethe same. It will be a great grief to me if Gandhiji follows suit.

J. L. Nehru '*A Bunch of Old Letters*',
Edition 1958, Page 6

अर्थ है गांधीजी के राजनीतिक विचारों के निर्माण के विषय में, मैंने दास (सी० आर० दास) को सूचित कर दिया है। मैं गांधीजी का मान करता हूं, परन्तु मैं उनके विचारों को, क्योंकि वे उनके हैं, स्वीकार करने को तैयार नहीं। मैंने दास को पहले सचेत कर रखा है कि हमको गांधीजी के साथ बड़े संघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए। उनका शास्त्रीजी से बातचीत के लिए दिल्ली जाना, उनका निरन्तर मालवीयजी से मिलना और उनसे सामान्य सहमति, हमारी पार्टी के लिए शुभ लक्षण नहीं हैं। यह गांधीजी के लिए भी शुभ नहीं। ऐसा भी है कि अपनी ख्याति पर सीमा से अधिक विश्वास किया जाये। श्रीमती बीसेण्ट इसका मूल्य चुका रही है। दूसरे भी इसका मूल्य दे रहे हैं। मुझे अत्यन्त दुःख होगा यदि गांधी भी इसी मार्ग पर चल पड़े।

इसके उपरान्त पण्डित मोतीलाल नेहरू ने जवाहरलाल नेहरू को २६ फरवरी को एक अन्य पत्र लिखा। उसमें निम्न शब्द उल्लेखनीय हैं—

Gandhiji is going to make an important pronouncement about his own position in politics. I have already written to you on the subject. Das agress with me in what I have said. We had a talk about it among other things this morning. That Gandhiji is going to take up an attitude not in complete accord with congress resolution is fairly clear. Our only grievance is that while he has evidently taken Shastri and Malviya in to his confidence he has left us severely alone. However, we have to wait and watch for the new light. It will then be for us to

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

consider whether we shall take it for our guide or not. This is the decision I had arrived at when I wrote to you on the subject last. I put it to Das this morning and he agreed with me but made a special point of my telling you that the idea of the grievance did not originate with him and that he has only taken it up from me. He thinks he is being maligned by Gandhiji behind his back and, therefore, wishes me to make special mention of this.

J. L. Nehru : '*A Bunch of Old Letters*', Edition 1958, Page 7

अर्थ है—गांधीजी अपनी राजनीति में स्थिति के विषय में विशेष घोषणा करने वाले हैं। मैंने पहले भी इस विषय में तुमको लिखा है। दास उससे सहमत है, जो कुछ मैंने कहा है। अन्य विषयों के साथ मैंने उससे आज प्रातः इस विषय पर भी विचार किया है कि गांधीजी ऐसा व्यवहार स्वीकार कर रहे हैं जो कांग्रेस के प्रस्तावों के पूर्णतः अनुसार नहीं है। हमारी आपत्ति यह है कि उन्होंने मालवीय और शास्त्री को विश्वास में लिया है और हमें छोड़ दिया है। हमें उनमें (गांधी जी में) नये प्रकाश होने की प्रतीक्षा करनी होगी और तब देखना होगा। तब हम देखेंगे कि हम उनको अपना पथ-प्रदर्शक मानें अथवा न। जब मैंने अपना पहला पत्र तुमको लिखा था तो यह हमारा निर्णय था। उस पत्र के विषय में मैंने दास को आज प्रातः कहा है। वह मुझसे सर्वथा सहमत है। यद्यपि यह आपत्ति उसको नहीं सूझी। मेरी ही विचार की हुई बात है। उसने मुझसे यह ग्रहण की है। उसका विचार है कि उसकी पीठ पीछे उसकी गांधीजी के समक्ष निन्दा की जा रही है। इससे उसने मुझे इसका उल्लेख तुमसे करने के लिए कहा है।

विचार करने की बात यह है कि यह सबकुछ जवाहरलाल नेहरू को लिखना किस कारण आवश्यक था ? स्पष्ट है कि जवाहरलाल नेहरू दिल्ली में जायेगा तो गांधीजी को अपने पिता और कांग्रेस के प्रधान के विचार बता देगा।

बात स्पष्ट है कि मार्च सन् १९२० से ही गांधीजी ने मुसलमानों के खिलाफत आन्दोलन में आगे बढ़कर भाग लेना आरम्भ कर दिया था। और हिन्दुस्तान भर में कांग्रेस और मुसलमान मौलाना भाई-भाई के नारे लगने लगे थे। इस हो-हल्ला में कलकत्ता और नागपुर में कांग्रेस को खिलाफत आन्दोलन में सहयोग देने का प्रस्ताव पारित किया गया और कांग्रेस तिलक स्वराज्य कोष का मुख मुसलमानों के लिए खोल दिया गया।

गांधीजी ने आश्वासन दे दिया कि वह एक वर्ष में स्वराज्य ले देंगे। मोतीलाल जी के और गांधीजी के विषय में तो जो कुछ है, वह तो है ही। परन्तु हिन्दू नेता भी इस गांधीजी की आंधी में उड़ गये। लाला लाजपतराय थे। जब वह नागपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेस अधिवेशन (सन् १९२१ में) से लौट रहे थे, एक विख्यात पत्र प्रतिनिधि दुर्गादास से पूछे जाने पर कि 'नागपुर जाते हुए तो आप गांधीजी के विचार के विपरीत थे, परन्तु वहां उसके पक्ष में राय दे आये हैं।' तो लालाजी ने कहा था–

"Do you realise, that in our effort to carry the Muslims with us we have adopted the Khilafat programme which, if successful, will make them more fanatical ? I have this conflict in mind. We have to get rid of the British : we have to carry the Muslims with us. May be this gamble of the Mahatma will pay off. I shall watch and decide my course of action later. For the present, I go with Gandhi. To the exent it will strengthen the nationalist movement and revive faith in our own culture, I will back It."

Durga Dass, *India from Curzon to Nehru* **(1969), Page 77**

अर्थ है—तुम समझते नहीं हो कि मुसलमानों को अपने साथ रखने के लिए हमने यह खिलाफत कार्यक्रम स्वीकार किया है, जो यदि सफल हुआ तो उनको और अधिक दीवाना बना देगा ? यह मेरी मानसिक द्विविधा थी। हमने अंग्रेजों से छुट्टी पानी है और मुसलमानों को अपने साथ रखना है। कदाचित् यह गांधीजी का जुआ है और इसका लाभ हो। मैं देखूंगा और समझूंगा कि मुझे पीछे क्या करना है। अभी मैं गांधीजी के साथ हूं। उस सीमा तक ही जहां तक यह आन्दोलन जाति को सुदृढ़ करता है और अपनी संस्कृति में विश्वास दृढ़ कराता है। मैं देखूंगा और प्रतीक्षा करूंगा।

यह एक आर्यसमाजी और हिन्दू विचार के नेता की प्रतिक्रिया थी।

अब तनिक देखिए कि मुस्लिम लीग के एक सदस्य मिस्टर जिन्ना, जो पीछे पाकिस्तान को जन्म देने वाले हुए, गांधीजी के इस आन्दोलन के विषय में क्या कहते हैं।

श्री दुर्गादास ने जिन्ना से भेंट की और उनके विचार वह इस प्रकार लिखता है। श्री दुर्गादास से जिन्ना ने कहा—

"Well, youngman," he remarked, "I will have nothing to do with this pseuo-religious approach to politics. I part company with the Congress and Gandhi. I do not believe in working up mob hysteria. Politics is a gentleman's game."

Durga Dass, *India from Curzon to Nehru* **(1969), Page 76**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ है—देखो नवयुवक ! मैं इस राजनीति में नीम मज़हवी व्यवहार से कुछ वास्ता नहीं रखूंगा। मैं कांग्रेस और गांधी से पृथक् होता हूं। मैं भीड़ की हुल्लड़-बाजी में विश्वास नहीं रखता। राजनीति भले लोगों का कार्य है।

कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में गांधीजी की कार्य दिशा स्थिर हो गयी थी। वह अपने मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हो गये थे और उन्होंने उस समय देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था को अपने साथ कर लिया था।

हम गांधीजी के असहयोग आन्दोलन को गलत समझते हैं। कारण यह कि आदिकाल से मानव समाज का यह अनुभव है कि अबुद्ध नरेश पूर्ण देश की समाज को मिथ्या मार्ग पर ले जाने की सामर्थ्य रखता है। नरेश का अर्थ नरों का स्वामी है, केवल राजा ही नहीं। इसलिए महात्मा गांधी इसी पदवी पर थे।

असहयोग आन्दोलन में तीन भूलें स्पष्ट थीं। एक यह कि सरकारी दमन के समय भी लोग अहिंसात्मक रह सकेंगे क्या? इसका किसी प्रकार से विश्वास नहीं था। इसकी परीक्षा भी नहीं की गई थी और असहयोग करना स्वीकार कर लिया गया था।

दूसरी भूल यह थी कि जितना कुछ पहले आन्दोलनों से प्राप्त किया गया था, उससे लाभ उठाने का यत्न नहीं किया गया था।

तीसरी भूल यह थी कि एक विदेशीय विषय को अपने देश का विषय बनाया गया था। हमारा अभिप्राय खिलाफत से है। खिलाफत के विषय में समझदार मुसलमान भी एकमत नहीं थे। मुस्लिम लीग ने भी कलकत्ता में खिलाफत के पक्ष में प्रस्ताव तो किया था, परन्तु उसके नेता सरकार से असहयोग करने के लिए तैयार नहीं थे, न ही वे अहिंसात्मक रहने को तैयार थे। यह ठीक था कि आम मुसलमान खलीफा को अपना मज़हबी नेता मानते थे, परन्तु खलीफा के अपने देश के मुसलमान तो उसे ऐसा नहीं मानते थे।

ये तीनों कार्य ही अबुद्ध थे, बुद्धियुक्त नहीं थे। अहिंसात्मक युद्ध और हिंसात्मक युद्ध दोनों सीमित संख्या में लोग ही चला सकते हैं। साथ ही युद्ध करने से पूर्व युद्ध वालों को प्रशिक्षित किया जाता है। दोनों प्रकार के युद्धों के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है, अन्यथा सेना में भगदड़ मच जाती है। अथवा युद्ध के नियमों का उल्लंघन कर, योद्धा अपनी ही हानि कर लेते हैं। गांधीजी के अहिंसात्मक युद्ध का प्रशिक्षण खद्दर पहनना माना गया था, साथ ही जिस समुदाय के लोगों के लिए यह आन्दोलन खड़ा किया गया था वे हिंसा को छोड़े हुए नहीं थे।

इस बात का स्पष्टीकरण वायसराय चैम्ज़फार्ड ने, जब गांधीजी शिमला में उनसे मिलने गये थे, पूछा था। गांधी इसका उत्तर न दे सके थे। एक और घटना घटी थी। यू० पी० के प्रतिनिधि श्री दुर्गादास ने गांधीजी को अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन के समय, जो दिसम्बर सन् १९२१ में हुआ, पूछा था—कांग्रेस ने तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौगन्धपूर्वक वचन यह लिया है कि वे ग्रहिंसात्मक सत्याग्रह करेंगे ग्रौर उसी समय ग्रहमदाबाद में हो रहे मुस्लिम लीग के ग्रधिवेशन में मुस्लिम लीग के प्रधान कानपुर के हसरत मुहानी ने हिंसात्मक ग्रान्दोलन के लिए ग्राग्रह किया।

गांधीजी को यह नहीं सूझा कि हिन्दू-मुसलमान इकट्ठे कैसे कार्य कर सकेंगे जब एक कह रहा हो कि वह ग्रहिंसात्मक रहेगा ग्रौर दूसरा कह रहा हो कि हिंसा करना हमारा ग्रधिकार है।

गांधीजी ग्रपने उपायों पर इतने दृढ़ थे कि श्री दुर्गादास ने जब गांधीजी से पूछा कि वह डाक्टर बीसेण्ट ग्रौर जिन्ना के वक्तव्यों के विषय में क्या कहते हैं। बीसेण्ट ने कहा था कि स्वराज्य ३० सितम्बर को होने वाला है ग्रौर जिन्ना ने कहा था कि यह मज़हबी दीवाने हैं, ये ग्रसफल होंगे।

इसपर गांधीजी ने कहा, 'मैं ग्रभी देश भर में घूमकर ग्राया हूं ग्रौर मैं मानता हूं कि स्वराज्य हो चुका है।'

जिन्ना के विषय में गांधीजी ने कहा—

Hindu-Muslim unity was to him an article of faith, and he could never be so foolish as to inaugurate a movement likely to harm this cause. Gandhi added that there was a fundamental difference in his approach to the issue of freedom from that of Jinnah and others who wanted to build the movement for it from the top. He, on the other hand, wanted to build from below. The Muslim masses instinctively understood the religious issue and would feel brotherly towards non-Muslims who espoused their cause.

Durga Dass, '*India from Curzon to Nehru & After*',

Page 98

ग्रर्थ है—हिन्दू-मुसलमान ऐक्य मेरे लिए धर्म का ग्रंग है। ग्रौर मैं मूर्ख नहीं हूं कि कोई ऐसा ग्रान्दोलन चलाऊं जिससे इस उद्देश्य को हानि पहुंचे। गांधीजी ने ग्रागे कहा, मेरी समस्या के सुझाव में ग्रौर जिन्ना की समस्या के सुझाव में ग्रन्तर है, वे ऊपर से ग्रान्दोलन चलाना चाहते हैं ग्रौर मैं भूमि से ग्रान्दोलन ग्रारम्भ करना चाहता हूं। ग्राम मुसलमान ग्रन्तर्प्रेरणा से मजहबी मामला समझते हैं ग्रौर उनकी ग्रोर भाई की भांति व्यवहार करेंगे जो उनके मजहबी उद्देश्य का पक्ष लेंगे।

हम समझते हैं कि गांधी सर्वथा गलत थे ग्रौर जिन्ना ठीक था। साथ ही, यह हिन्दू जीवन-मीमांसा नहीं है। हिन्दू जीवन-मीमांसा यह है कि यदि तीन बुद्धिमान् एक बात करें, जो हजारों लोगों की धारणा के विपरीत हो तो विद्वानों की बात माननीय होती है ग्रौर सामान्य लोगों की नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा यह निश्चित मत है कि गांधी राम और हिन्दू धर्म की बात कहते हुए हिन्दुत्व का विरोध कर रहे थे।

इस विषय पर एक अन्य घटना का उल्लेख करना ठीक होगा। जब गांधीजी अपना न-मिल-वर्तन (Non-cooperation) आन्दोलन खड़ा कर रहे थे, तब प्रिंस ऑफ वेल्ज़ भारत में आये। वह शासन सुधारों का श्रीगणेश करने आये थे। उनके आने पर वायसराय ने गांधीजी से प्रार्थना की थी कि वह अपने आन्दोलन से प्रिंस का बहिष्कार न करें।

इसके लिए वायसराय लार्ड रीडिंग ने यत्न किया कि गांधीजी के साथ किसी प्रकार का समझौता हो जाये।

गांधीजी ने यह विज्ञप्ति जारी कर दी कि प्रिंस ऑफ वेल्ज़ का बहिष्कार किया जाये। लोगों ने गांधीजी की न केवल बहिष्कार की बात मानी वरन् बम्बई में कुछ लोगों ने हिंसात्मक कार्यवाई भी की।

इस विषय में श्री के० एम० मुंशी इस प्रकार लिखते हैं —

Pandit H. N. Kunzru and my friend Jamnadas Dwarkadas were deputed by Lord Reading, as well as Tej Bahdur, Mrs. Besant and Malviyaji, to meet Gandhiji at Ahmedabad on Dec. 18, 1921, with the offer that Reading would call a Round Table Conference at Calcutta a week prior to the Prince's visit there, he himself reperesenting the British Government, and India to be represented by her politicians including Gandhiji and other congress leaders. Reading further offered that at this Conference, he would, on behalf of the British Government, concede full provincial autonomy and discuss the possibilities of dyarchy in the Central Government. All the political prisoners were to be released.

The same offer was given to C. R. Das who was at that time serving a sentence in the Alipore Jail, Calcutta. Das welcomed the offer immediately and telegraphed to Gandhiji to accept it. Gandhiji at first was inclined to accept the offer, but according to Kanji Dwarkadas (brother of Jamnadas Dwarkadas) about half-a-dozen Maulvi's induced him to change his mind.

The reason for this extraordinary decision was that though Reading had offered amnesty for all political prisoners, it

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

would not secure the release of the Ali Brothers; for they had been convicted under certain provisions of the Penal Code, which placed them in a different category from other political prisoners.

Gandhiji's decision was most unfortunate. According to Subhas Chander Bose, A. C. R. Das was beside himself with anger. The chance of a life-time has been lost." he said.

K. M. Munshi, *'Pilgrimage to freedom'*, **Page 23**

अर्थ है—लार्ड रीडिंग ने श्री·एच० एन० कुंजरू और मेरे मित्र जमनादास द्वारिका दास को तथा, उनके साथ तेज बहादुर सप्रू, श्रीमती बीसेण्ट और मालवीय जी को गांधीजी से मिलने के लिए भेजा। ये लोग अहमदाबाद आये और गांधीजी से १८ दिसम्बर सन् १६२१ को मिले। वे लार्ड रीडिंग से यह प्रस्ताव लाये थे कि लार्ड रीडिंग कलकत्ता में एक गोलमेज कान्फ्रेंस बुलायेंगे जिसमें वह स्वयं ब्रिटिश सरकार और हिन्दुस्तान की सरकार का प्रतिनिधि बन बैठेगा और भारत की ओर से भारत के राजनीतिज्ञ जिसमें गांधीजी और दूसरे कांग्रेस नेता भी होंगे। लार्ड रीडिंग ने यह प्रस्ताव किया था कि वह सब राजनीतिक बंदियों को छोड़ देगा। वह उस गोल मेज कान्फरेंस में यह प्रस्ताव रखेगा कि सूबों में जो दो-अमली है, वहां पूर्ण स्वराज्य दे देंगे और केन्द्र में दो-अमली लागू कर देंगे। सब राजनीतिक बंदी छूटने वाले थे।

यही प्रस्ताव सी० आर० दास को दिया गया था, जो उसको अलीपुर जेल कलकत्ता में भेजा गया था। दास ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया था और उसी समय गांधीजी को तार दे दिया कि वह भी स्वीकार कर लें। गांधीजी पहले तो मान रहे थे, परन्तु पीछे कांजी द्वारिकादास जमनादास के भाई के अनुसार, वहां आधे दर्जन के लगभग मौलाना बैठे थे, जिन्होंने गांधीजी का विचार बदल दिया।

इस निर्णय का कारण यह था कि दूसरे कैदियों के साथ मौलाना मुहम्मद अली को छोड़ने की बात नहीं थी। यह इस कारण कि मौलाना मुहम्मद अली सामान्य कानून से दण्डित हुए थे। तब के आन्दोलन के लिए बनाये कानून से नहीं दण्डित हुए थे। गांधीजी का यह निर्णय देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण था।

महात्माजी के व्यवहार में उनके राम-नाम जपने का दोष नहीं था। यह जाप तो वह स्वभाववश एक हिन्दू परिवार में जन्म लेने के कारण करते थे। दोष उनकी शिक्षा का था। वह अनेक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों की भाँति प्राचीन भारतीय संस्कृति, जिसे हम हिन्दुत्व के नाम से जानते हैं, से सर्वथा रहित थे।

वह ईश्वर को मानते थे बिना जाने कि ईश्वर किन की सहायता करता है। परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि दी है और महात्मा गांधी बुद्धि को कर्म में पथ-प्रदर्शक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार नहीं करते थे। गांधीजी ने बुद्धि के विकास में श्रद्धा की बाधा खड़ी की हुई थी।

हम समझते हैं कि पण्डित मोतीलालजी ने उनके मस्तिष्क पर अधिकार किया हुआ था और वह श्रद्धा से बिना विचार किये उनका पालन कर रहे थे।

पण्डित जवाहरलाल ने अपने स्वरचित जीवनचरित्र में यह प्रश्न उठाया है कि उनके पिता पण्डित मोतीलाल और गांधीजी में इतना सामंजस्य क्यों था। वह लिखते हैं कि दोनों के चरित्र और खान-पान तथा जीवन सम्बन्धी अनेक बातों में भारी भेद था। इसपर भी दोनों में बहुत सामंजस्य था।

श्री जवाहरलाल तो यह समझते थे कि परस्पर विपरीत स्वभाव वाले प्रायः घनिष्ठ मित्र होते हैं, परन्तु हम ऐसा नहीं मानते। वास्तव में यह बुद्धि के चिर-काल से प्रयोग न करने से कुण्ठित हो जाने के कारण था। पण्डित मोतीलालजी में मुसलमानों से सहिष्णुता उनके जीवन-भर के संस्कारों के कारण थी और महात्मा गांधी मोतीलाल नेहरू को एक सफल वकील समझ उनके प्रति अवि-चारित श्रद्धा के कारण उनके मित्र थे।

यही कारण है कि गांधीजी मौलना हजरत मुहानी के अति हिंसात्मक विचारों को सुनकर भी समझ रहे थे कि मुसलमानों के साथ मिलकर अहिंसात्मक सत्याग्रह चल सकेगा। कुण्ठित बुद्धि और अन्ध श्रद्धा के कारण ही यह था। एक तोला भर श्रद्धा मन भर तर्क से भारी सिद्ध हो रही थी।

यहां हमने सन् १९२२ के दोषपूर्ण आन्दोलन की पृष्ठभूमि बताई है। मिस्टर जिन्ना की भविष्यवाणी ठीक सिद्ध हुई थी। सत्याग्रह से पहले ही गांधी कह रहे थे कि देश स्वतंत्र हो गया है। देश में मोपला मुसलमान यही समझे थे कि इस्लामी राज्य हो गया है और वहां उन्होंने इस्लामी राज्य स्थापित करने का यत्न किया। समाचार-पत्रों और वहां जाकर सर्वेक्षण करने वालों का अनुमान है कि दो सहस्र से ऊपर हिन्दू मारे गये थे। सहस्रों स्त्रियों का शील भंग किया गया था और उनको मुसलमान बना लिया गया था।

श्री दुर्गादास ने अपनी पुस्तक में इस घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह मौलाना मुहम्मद अली के भड़काने वाले व्याख्यानों का प्रभाव था।

यह सब समाचार गांधीजी को भी मिला होगा, परन्तु घटनाएँ बुद्धि का प्रयोग करने वाले का ही पथ-प्रदर्शन करती हैं। जो बुद्धि को ताक पर रखकर व्यवहार करते हैं, वे किसी भले मनुष्य की सीख पर घटनाओं से आंखें मूंद भावनाओं में बहते चले जाते हैं।

इसमें तत्कालीन हिन्दुओं का कम दोष नहीं है। सरदार पटेल जैसे हिन्दू भी उस समय गांधीजी के सम्मोहन में मूर्छित हो रहे थे। यदि यह कहा जाय कि सब एक ही मिट्टी के घड़े थे तो ठीक ही होगा। किसी को समझ नहीं आया कि एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लाम से अनभिज्ञ व्यक्ति उनको इस्लाम के चंगुल में फंसा रहा है।

श्री गांधीजी क्रान्तिकारियों की निन्दा करते हैं और इतिहास इस बात का साक्षी है कि क्रान्तिकारियों के किंचित् मात्र प्रयास ने भारत को स्वराज्य के पथ पर ला खड़ा किया था।

जो दूषित पग ब्रिटिश सरकार ने इस देश में हिन्दू-मुसलमान वैमनस्य को उत्तेजित करने का किया था, उसका तो कांग्रेस ने सन् १९२६ में समर्थन किया था और उसको उग्र किया था गांधीजी के खिलाफत ग्रान्दोलन ने। श्री जवाहरलाल अपने स्वरचित जीवनचरित्र में लिखते हैं--

Owing to the prominence given to the Khilafat movement in 1921 a large number of Moulvies and Muslim religious leaders took a prominent part in the political struggle. They gave a definite religious tinge to the movement, and Muslims generally were greatly influenced by it. Many a Westernised Muslim, who was not of a particularly religious turn of mind, began to grow beard and otherwise conform to the tenets of Orthodoxy. The influence and prestige of the Moulvies, which had been gradually declining owing to new ideas and a progressive Westernisation began to grow again and dominate the Muslim community. The Ali brothers, themselves of a religious turn of mind, helped in this process, and so did Gandhiji, who paid the greatest regard to the Moulvies and the Maulanas.

'*J. L. Nehru—An Autobiography*', **British Edition (1947), Page 71-72**

अर्थ है—सन् १९२१ में खिलाफत ग्रान्दोलन को प्रभुता देने के कारण बहुत बड़ी संख्या में मौलवी ग्रौर मुल्लाग्रों ने ग्रान्दोलन में मुसलमान मज़हवी नेताग्रों ने राजनीतिक ग्रान्दोलन में खुलकर भाग लिया। उन्होंने निश्चित रूप से ग्रान्दोलन को मजहवी रंग चढ़ा दिया ग्रौर इससे मुसलमान ग्राम-तौर पर प्रभावित हुए। पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित मुसलमान जो मज़हवी विचार नहीं रखते थे, वे भी मुख पर दाढ़ियां रखने लगे ग्रौर दूसरी मज़हवी वातें मानने लगे। मौलवियों की प्रतिष्ठा ग्रौर प्रभाव से नये पाश्चात्य प्रगतिशील विचार जो कम हो रहे थे, पुनः वृद्धि पाने लगे ग्रौर मुसलमान समुदाय को प्रभावित करने लगे। ग्रली भाई स्वयं मज़हबी मन रखते थे ग्रौर उन्होंने इस दिशा में वहुत सहायता की। गांधीजी ने भी यही किया। वह ग्रत्यधिक मान इन मुल्ला-मौलानाग्रों का करते थे। देश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक अवस्था उन्नत करने के विषय जनता के हाथ में दिये जा चुके थे।

उनको चाहिए था कि देश को उन्नत करने का यत्न करते और शेष के लिए पुनः युवकों को काम करने देते।

सन् १९२२ का गांधीजी का प्रयास असफल रहा। कारण यह कि गांधीजी चाहते थे कि जनता पूर्णतः शान्तिमय रहे। लोग ऐसा रह नहीं सके। इस कारण गांधीजी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया।

इसी बीच में वह सरकार द्वारा पकड़ लिये गये और उनको छः वर्ष का कारावास का दण्ड दे दिया गया।

गांधीजी के चेले अथवा गुरु जो भी कहो—पण्डित मोतीलाल, सी० आर० दास इनके अनुयायी और श्री राजगोपालाचार्य पुनः विचार करने बैठे, परन्तु परस्पर झगड़ पड़े। ठीक वही बात हुई जो स्वामी दयानन्द की मृत्यु के उपरान्त आर्यसमाज में हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

दोष कहां था ?

हिन्दुत्व में बाधा किस कारण पड़ी थी ?

हमारा निश्चित मत है कि हिन्दू अर्थात् प्राचीन भारतीय संस्कृति में कोई दोष नहीं है। परन्तु सामान्य हिन्दू, संस्कृति को गौण मान, सभ्यता पर बल देने लगे थे। वैसे सब हिन्दू वेदशास्त्रों का मान करते थे।

हम सोमनाथ मन्दिर के पुनरुद्धार की घटना का उल्लेख करना चाहते हैं। उस मन्दिर के विषय में बाबू राजेन्द्र प्रसाद, जो स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति हुए थे, सोमनाथ के मन्दिर की आधारशिला रखने के लिए जाने लगे तो जवाहरलाल नेहरू ने इसपर आपत्ति की। उन्होंने राष्ट्रपति को लिखा कि उनका एक हिन्दू मन्दिर का शिलान्यास करने के लिए जाना संविधान के विपरीत होगा। बाबू राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति पद छोड़ने के लिए अथवा महाअभियोग (Impeachment) चलवाने के लिए तैयार हो गये थे। परन्तु जिस समय पंजाब (पाकिस्तान) और पूर्वी बंगाल के सभी मन्दिरों को गिराने की योजना की नींव रखी जा रही थी, उस समय नेहरू जी को समझ नहीं आया था कि क्या हो रहा है। जो कुछ देश-विभाजन के समय पंजाब और बंगाल में हुआ, वैसा सब कुछ इस्लाम जहां-जहां सत्ता पाता था, होता था। पंजाब और पूर्वी बंगाल में हिन्दू को निःशेष किया गया है। इस विनाश की नींव रखी गयी थी सन् १८८१ से १९०४ तक और सन् १९२१-२२ में।

एक मुसलमान लेखक, जिसने अपनी पुस्तक 'Decisive Moments in the History of Islam' में इस्लाम के बहुत गुण गाये हैं, वह भी लिखने पर विवश हुआ है—

The tolerance of the Muslim State was, in fact, limited to the liberty of faith and rites; it did not comprise all the social and civil manifestations of daily life. The non-Muslim people were always considered by Muslim society as inferior from the social point of view; in the field of public life, they were deprived of the protection, respect and pride which the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

muslims enjoyed. This distinction dates from the early days of Islam; it was officially designed and laid down by the State. Omar ibnal-Khattab, the second Caliph, was the first to formulate this policy towards the Zimmis (Non-Muslims).

Mohd. Abdulla Enan, '*Decisive Moments in the History of Islam*' **(S. A. Latif), Page 17-18**

अर्थ है—मुस्लिम राज्य की सहनशीलता वास्तव में सीमित है, दूसरों के मज़हब और रीति-रिवाज के विषय में। परन्तु यह सब शहरी जीवन और सामाजिक हक-हकूक पर लागू नहीं होती थी। गैर-मुसलमान सदा मुस्लिम से सामाजिक व्यवहार में घटिया समझे जाते थे, सामाजिक जीवन में सदा रक्षा, मान-प्रतिष्ठा जो मुसलमानों को मिलती थी, से वंचित रखे जाते थे।

यह मतभेद इस्लाम से बहुत पुराना है और इबन-अल खतेब द्वितीय खलीफे ने इन नियमों को सबसे पहले प्रचलित किया था। **यह** सब जिम्मियों (अमुसलमानों) पर लागू होते थे, जहां इस्लामी राज्य हो जाता था।

संक्षेप में, यही लेखक इन भेदभाव की बातों को इस प्रकार लिखता है—

The Zimmis (Non-Muslims) were not allowed to build new churches of synagogues or to rebuild those already fallen: neither to raise the cross on the churches or to expose their sacred books in the streets or public places; or to chant their prayers in the churches situated in Muslim quarters; they could not light tapers and they must proceed quietly in funeral processions while passing through Muslim quarters; they are also prohibited to try to convert a Muslim, or to obstruct the embracing of Islam by a Christian; they must comply with the rules of humility and respect due to Muslims, such as to avoid sitting before a Muslim without permission, and not to wear Muslim clothes; they must have their special garments and colours. They were also forbidden to have Arabic names, or to carry inscribe Arabic letters on their seals, or to use saddles or to carry arms, or to have Muslim slaves. Caliph Omar wrote to Amr Ibn Al-us, conqueror of Egypt and its first Muslim Governor in a message concerning the non-Muslim: "The Zimmis must be sealed in the neck with lead; they must show their belts, shave their beards, and ride their mounts

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

aside. The Jiziya (tribute) is to be imposed only on those who are already shaved (adults) : it must not be imposed on women or boys; the Zimmis are not allowed to dress themselves in the same manner as Muslims."

Mohd. Abdulla Enan, '*Decisive Moments in the History of Islam*', **(S. A. Latif), Page 18**

अर्थ है —जिम्मी (गैर-मुसलमान) अपने धर्मस्थान बना नहीं सकते थे और पुराने गिर जाने पर उनकी मरम्मत नहीं कर सकते थे, वे अपने गिरजाघरों पर सलीव खड़ी नहीं कर सकते थे; न ही अपनी धर्म-पुस्तकें बाजार अथवा सार्वजनिक स्थानों पर सुना सकते थे; ये अपनी प्रार्थनाएं उन गिरजों में गा नहीं सकते थे जो मुस्लिम मुहल्लों में होते थे। वे मोमबत्तियां जला नहीं सकते थे और मरे हुओं के जनाजे के साथ, जब वे मुसलमानी मुहल्ले से गुजर रहे होते, तो चुपचाप गुजर सकते थे। उनको स्वीकृति नहीं होती थी किसी मुसलमान का मज़हब परिवर्तन करने का यत्न करें। न ही वह किसी ईसाई को मुसलमान होने से रोक सकते थे।

उनके लिए आवश्यक था कि वे मुसलमान के सम्मुख हीनता और मुसलमान के प्रति सम्मान का भाव रखें। उसके सम्मुख बिना स्वीकृति के बैठें नहीं। वे वैसे वस्त्र नहीं पहन सकते थे, जैसे मुसलमान पहनते थे। उनको अर्बी में नाम रखने की मनाही थी। वह अपनी मुहरों पर अरबी हरूफ नहीं लिख सकते थे। वह घोड़े पर टांगें दोनों ओर रखकर सवारी नहीं कर सकते थे, शस्त्रास्त्र नहीं रख सकते थे, न ही किसी मुसलमान को गुलाम बना सकते थे।

खलीफा ने उम्र इब्न अल-आस को, जिसने मिस्र विजय किया था, लिखा कि जिम्मी की गर्दन पर राज्य की मुहर जरूर लगाई जाये। वह अपनी पेटियां दिखाये, दाढ़ी मुंड़ाकर रखे और घोड़े पर टांगें एक तरफ कर बैठे।

जजिया केवल उनसे लिया जाये जो दाढ़ी मुंड़वाते हैं। अभिप्राय है सज्ञानों से। यह औरतों और बच्चों से न लिया जाये। जिम्मी को मुसलमानों की तरह के वस्त्र नहीं पहनने चाहिए।

इसी मानसिक अवस्था वालों के लिए पाकिस्तान बनने में सहायता देने वाले नेहरू यह कहने में हिचकिचाये नहीं कि किसी ऐसे मन्दिर का शिलान्यास न करें जिसको मुसलमानों ने कई बार गिराया था।

यही श्री जवाहरलाल थे जिनको देश का सर्वेसर्वा बनाने के लिए गांधीजी और कांग्रेस के अन्य लोग उचित-अनुचित **सब उपाय** प्रयोग करने के लिए तैयार थे।

श्री जवाहरलाल देश के **प्रथम प्रधानमंत्री कैसे** बन गये, यह भी विचारणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विषय में श्री कृपलानी अपनी पुस्तक में लिखते हैं —

The working Committee meeting held in Calcutta from December 7 to 11, 1945 decided to hold the session of the Congress in the first week of April 1946. Proposals were invited by the A. I. C. C. office for the election of the President. April 29 was fixed as the last day for receiving the proposals. Three names were duly proposed by the provinces—those of Sardar Patel, Pattabhi and mine. Jawaharlal's name had not been proposed.

Gandhiji had earlier expressed a wish that at that juncture Jawaharlal should be the President. What reasons impelled Gandhiji to recommend his name were not mentioned, so far as I remember. The final date for the proposals to be received by the A. I. C. C. office was drawing near. Only fifteen members of the All India Congress Committee are required to propose the name of the president. A meeting of the working committee was being held in Delhi a few days earlier. I sent a paper round, proposing the name of Jawaharlal. The members of the working committee signed it and also some loeal members of the All India Congress Committee. It was thus that the name of Jawaharlal was proposed for presidentship. The others thereupon withdrew their nemes. It was certain that if Jawaharlal's name had not been proposed, Sardar would have been elected as the president. Sardar did not like my intervention.

J. B. Kripalani, '*Gandhi—His life and Thought*',
Page 248

अर्थ है—अक्तूवर ७ से ११ तक सन् १९४५ में (कांग्रेस) वकिंग कमेटी की मीटिंग कलकत्ता में हुई। हमने निश्चय किया कि अप्रैल सन् १९४६ में कांग्रेस का अधिवेशन हो और उसके लिए प्रधान पद के लिए नाम मांगे गये थे। अन्तिम दिन नाम आने की २९ अप्रैल, १९४६ नियुक्त की गयी थी। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों ने तीन नाम प्रस्तावित किये थे। ये नाम थे, सरदार पटेल, पट्टाभि का आर तीसरा मेरा नाम था। जवाहरलाल का नाम प्रस्तावित नामों में नहीं था।

गांधीजी ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि इस समय जवाहरलाल का नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आना चाहिए और उसे प्रधान होना चाहिए। गांधीजी क्यों चाहते थे ? उन्होंने बताया नहीं था। मुझे जहां तक याद है, यह बात तब हुई थी जब अन्तिम तिथि नामांकित करने की समीप आ रही थी। केवल अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पन्द्रह सदस्यों के हस्ताक्षरों से नाम प्रस्तावित किया जा सकता था। उस समय कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक दिल्ली में हो रही थी। मैंने एक कागज पर लिख कर घुमा दिया। उस पर जवाहरलाल के नाम का प्रस्ताव था। कार्यकारिणी के सदस्यों ने हस्ताक्षर कर दियें। कुछ स्थानीय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों ने भी हस्ताक्षर कर दिये।

इस प्रकार जवाहरलाल का नाम भी प्रस्तावित नामों में आ गया। इसपर दूसरों ने अपने नाम वापस ले लिये। यह निश्चय ही था कि यदि जवाहरलाल का नाम प्रस्तावित न किया जाता तो सरदार पटेल प्रधान बन जाते। सरदार ने मेरी इस हरकत को पसन्द नहीं किया।

श्री कृपलानी आगे लिखते हैं —

मैं समझता नहीं था कि स्वतंत्रता, जैसी कैसी भी आने वाली है, समीप आ गई है। मैं विचार करता था कि अभी हमें बहुत कशमकश करनी है। कौन भविष्यवाणी कर सकता था ? यह एक छोटी-सी घटना पर जाति का भाग्य बदल गया। कई लोगों के मार्ग उलट गये। आस्ट्रेलिया के एक राजकुमार की हत्या ने प्रथम विश्व युद्ध करा दिया था।

हम समझते हैं कि यह पूर्ण सत्य नहीं है क्योंकि श्री एन० बी० गाडगिल इसी घटना के विषय में लिखते हैं—

Some of us had planned to propose Vallabhbhai's name for the Congress presidentship. But some 'Gandhians' told us that Gandhiji wanted Jawaharlal as the president. Because, if he were not the president of the Congress, he would not be the Prime Minister and none knew how he would behave then. Consequently, Gandhiji called upon his disciplined soldier, Vallabhbhai to desist from the temptation.

'Government from Inside', **Page 11**

अर्थ है —हममें से कुछ ने यह विचार किया था कि वल्लभभाई का नाम कांग्रेस के प्रधान पद के लिए प्रस्ताव करेंगे। परन्तु कुछ गांधीवादियों ने कह दिया कि गांधीजी चाहते हैं कि जवाहरलाल प्रधान बने, क्योंकि यदि वह प्रधान नहीं होगा तो वह प्रधानमंत्री नहीं बनेगा। तब वह क्या करेगा ? पता नहीं। अतएव गांधीजी ने अपने अनुशासन में रहने वाले शिष्य सरदार पटेल को कहा और उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों वक्तव्यों में भेद यह है कि कांग्रेस के सैक्रेटरी श्री कृपलानी कहते हैं कि उनका विचार था कि अभी स्वतंत्रता नहीं मिल रही और श्री गाडगिल कहते हैं कि गांधीजी जानते थे कि उस वर्ष कांग्रेस का प्रधान सरकार का प्रधानमंत्री बनेगा।

इन दोनों वक्तव्यों में दूसरे भेद की बात यह है कि गांधीजी जवाहरलाल की धमकी से डर गये थे। नेहरू जी के पिता की धमकी से एक बार पहले भी गांधीजी डरे थे। यह सन् १९२० की बात है। इसका उल्लेख हम यथास्थान कर चुके हैं।

अतः हमारा मत है कि गांधीजी का नेहरू परिवार की धमकी से भयभीत रहना ही सबसे बड़ा दोष था और यह दोष गांधीजी में नहीं था, वरन् प्रायः हिन्दू समाज में है। यह इस समाज में एक सहस्र वर्ष की दासता से और हमारे विचार में उससे भी पहले संसार को मिथ्या कहने वालों ने उत्पन्न किया था। संसार को मिथ्या समझने वाले इस मिथ्या कहे जाने वालों के जंगल में फंसे भटकते रहते हैं। जब-जब भी इस मिथ्या को सत्य समझ हिन्दू डटकर खड़ा हुआ है, विघ्न स्वतः छिन्न-भिन्न होते दिखाई देने लगते हैं।

भारत में हिन्दुत्व का ह्रास तब से आरम्भ हुआ है जब से 'जगत् मिथ्या' का वाद आरम्भ हुआ है। कहा जाता है कि स्वामी शंकराचार्य के दादा गुरु गौड पादाचार्या के गुरु कोई शुक नाम के आचार्य थे। ये शुक महाभारत के लेखक श्री कृष्ण द्वैपायन के पुत्र थे अथवा कोई अन्य थे, कहा नहीं जा सकता। इतना तो निश्चय है कि श्री वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन, इस अद्वैतवाद और 'जगत् मिथ्यावाद' की बात नहीं मानते थे।

हमारा मत है कि शुक कोई आचार्य हुए हैं जो स्वामी शंकराचार्य से दो सौ अथवा कुछ अधिक वर्ष पूर्व हुए थे। स्वामी शंकराचार्य का काल, जो शंकर मठों में सुरक्षित वर्णनों से विदित होता है, विक्रमी शताब्दी से दो सौ वर्ष पहले के लग-भग है। अभिप्राय यह कि यह वेदान्त दर्शन, जिसमें इस जगत् को मिथ्या माना गया है, भारत में बाईस सौ वर्ष के भीतर ही फैला है और तब से ही भारतीयता का ह्रास आरम्भ हुआ दिखाई देता है। इससे पहले यदि कोई 'सबकुछ ब्रह्म ही है' ऐसा मानता होता तो वह कोई अज्ञात व्यक्ति ही रहा होगा। इस मत का व्यापक प्रचार स्वामी शंकराचार्य और उनके द्वारा स्थापित मठों के द्वारा ही हुआ है। यह मत वेद-विरुद्ध है और प्रायः किसी भी आर्ष ग्रन्थ में स्वीकार नहीं किया गया।

स्वामी शंकराचार्य और इनके मतावलम्बियों ने उपनिषदों के मनमाने भाष्य कर उनसे 'जगत्‌मिथ्या' का प्रचार किया है।

गांधीजी स्वयं तो अद्वैतवादी, जगत् को मिथ्या मानने वाले नहीं थे, परन्तु उनके पिछलग्गू दो प्रकार के भारतवासी थे। एक तो अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग और दूसरे वे हिन्दू, जो स्वामी शंकराचार्य की भांति बुद्धि को मिथ्या पथ-प्रदर्शक मानते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी शंकराचार्य यह समझते थे कि अध्यात्म विषयों में बुद्धि अर्थात् तर्क मिथ्या पथ-प्रदर्शक है। यह ठीक मार्ग नहीं दिखा सकता। साथ ही, जब स्वामीजी यह मानते थे कि 'एको ब्रह्म द्वितियोनास्ति' तो उनका अभिप्राय यही निकलता था कि किसी भी बात में तर्क करना निरर्थक है। जब ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं और ब्रह्म के विषय में तर्क कार्य नहीं करता तो यही सिद्ध होता है कि तर्क एक व्यर्थ की विद्या है।

इसके विपरीत वेद तथा दर्शन शास्त्र का पूर्ण आधार ही बुद्धि एवं तर्क है। इतिहास में भारतवर्ष पर सफल आक्रमण पिछले दो सहस्र वर्ष से ही आरम्भ हुए थे। वास्तव में हिन्दुत्व का राष्ट्रीय पक्ष तब से ही दुर्बल हुआ है।

इसको और अधिक दुर्बल किया है अंग्रेजी शिक्षा ने। अत: गांधी जी ने नेहरू परिवार की धमकी से डरकर हिन्दू सभ्यता और संस्कृति पर भारी आघात किया था।

यदि हम सन् १९२१ से सन् १९४८ तक के हिन्दुत्व विरोधी कारणों का विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि हिन्दू समाज में अन्धश्रद्धा (बुद्धि का बहिष्कार) और अंग्रेजी विकृत शिक्षा ही कारण हैं। इन दोनों ने क्या किया ? इसको हम इस प्रकार मानते हैं —

(१) देश में हिन्दुत्व विरोधी तत्त्वों को उभारा और सहायता देकर पुष्ट किया।

(२) हिन्दुओं में जागृत हो रही अपनी मान्यताओं पर श्रद्धा और भक्ति को ढीला किया।

(३) प्राचीन भारत के महिमा युक्त काल को इतिहास पूर्व का काल और मिथ्यावाद (mythology) कहकर विख्यात किया।

(४) अपनी प्राचीन श्रेष्ठता को भुलाकर ईसाई, मुसलमानों इत्यादि की हीन जीवन-मीमांसा की महिमा का बखान किया है।

ये और इसी प्रकार की अन्य बातों का व्यापक प्रचार किया है, इस अपने को रामभक्त कहने वाले गांधीजी तथा उनके शिष्यों ने।

यहां हम अभी यह नहीं बता रहे कि किस प्रकार इन मिथ्या दिशाओं में जाति की गति को रोका जा सकता था। यह हम आगे चलकर लिखेंगे। यहां हम इतना बता देना चाहते हैं कि भारतीयता, जिसका हम हिन्दुत्व के नाम से वर्णन कर रहे हैं, उसमें अभी भी जीवन तो है। जब तक वेद, वाल्मीकीय रामायण, महाभारत और उपनिषद् ग्रन्थ हिन्दुओं के मान्य ग्रन्थ रहेंगे, तब तक हिन्दुत्व की जीवन ज्योति सुलगती रहेगी और समय पाकर यह पुन: प्रज्वलित हो उठेगी। पहले कई बार ऐसा हो चुका है और अब भी ऐसा हो सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अध्याय

नैशनलिस्ट दल

गांधीजी के हिन्दुत्व के विरुद्ध उक्त आन्दोलन का विरोध भी हुआ था। सन् १९२४ में पण्डित मदनमोहन मालवीय के आह्वान पर हिन्दूसभा बनायी गयी थी। उसमें वे लोग, जो कांग्रेस और गांधीजी की, मुसलमानों को अधिमान देने वाली नीति को पसन्द नहीं करते थे, सम्मिलित हो गये। इन सम्मिलित होने वालों में लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, विनायक दामोदर सावरकर और बीसियों अन्य नेता थे। हिन्दू हितों की रक्षा करते हुए वे देश को स्वतंत्र कराने की योजना बनाने लगे।

सन् १९२५ में कानपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और उसमें हसरत मुहानी, वही जिन्होंने गांधीजी की नाक के नीचे अहमदाबाद में सन् १९२१ की दिसम्बर में कहा था कि हिंसात्मक कार्य करना उनका अधिकार है, कांग्रेस मंच पर से यह प्रस्ताव पारित करा गये कि हिन्दू महासभा देशद्रोही संस्था है और उसके सदस्य कांग्रेस में कोई पद नहीं पा सकेंगे। यह भी एक विडम्बना थी। मुस्लिम लीग के सदस्यों पर ऐसा प्रतिबन्ध नहीं था।

इस प्रस्ताव के पारित होने पर वे लोग, जो हिन्दू महासभा में सम्मिलित हुए थे, समझ गये कि वे अब कांग्रेस की ओर से कौंसिलों में नहीं जा सकेंगे। अतः उन्होंने अपना एक नया दल बनाया।

लाला लाजपतराय का विचार था कि वे दोनों दलों में रह सकेंगे। वे सन् १९२६ में पंजाब कांग्रेस के प्रधान बनने का यत्न करने लगे, परन्तु कांग्रेसियों ने लालाजी को पंजाब कांग्रेस कमेटी का प्रधान नहीं बनाया। परिणाम यह हुआ कि लालाजी केन्द्रीय लैजिस्लेटिव असेम्बली के लिए कांग्रेस के विरुद्ध और हिन्दू महासभा द्वारा आयोजित नैशनलिस्ट पार्टी के टिकट पर कांग्रेस को हराकर सफल हुए।

सन् १९२६ में इस नैशनलिस्ट पार्टी को भारी सफलता मिली। इससे पण्डित मोतीलाल नेहरू को भारी निराशा हुई। उन दिनों मोतीलाल नेहरू के सुपुत्र पण्डित जवाहरलाल यूरोप में थे। पण्डित मोतीलाल ने असैम्बली निर्वाचनों के विषय में जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र लिखा। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

It was only yesterday that I came back to Allahabad after finishing my election tour. You will know the net result before you receive this letter. We have come out strong though not in a majority in Madras and Bengal. The counting of votes in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Bihar has not yet been finished but this province is not likely to lag behind Madras and Bengal. Bombay and C. P. have fared badly but there has been nothing short of a disaster in the U. P. Nothing much was expected from the Punjab and we are likely to lose all the Assembly seats there—thanks to Lajpatrai's lies. The little province of Assam has done very well and Burma has contributed its quota of 2 to the Assembly. Our strength in the Assembly is likely to be somewhat greater than it was during the last three years but there is a debacle in the U. P. Council. It was not up to much last time and will be very much worse now. I had hardly any workers worth the name to help me in my own Province and had to give a good deal of my time to the other provinces, but even if I had given all my time to the U. P., I could not hope for better results. It was simply beyond me to meet the kind of propaganda started against me under the auspices of the Malviya-Lala gang. Publicly I was denounced as an anti-Hindu and Pro-Mohammedan but privately almost every individual voter was told that I was beef-eater in league with the Mohammedans to legalise cow slaughter in public places at all times. Shamji contributed to this propaganda in no small measure by saying that it was I who prevented his 'Cow Protection Bill' from being debated in the Assembl He stood from the Fyzabad Division for the Assembly; the other two candidates being a Swarajist and Daddan Saheb of Amethi. The Swarajist was a bell known and influential member of the bar but Daddan Saheb's money won the day. Shamji was financed by Malviya but Daddan was declared as his party's candidate. Shamji forfeited his security but the race between the Swarajist and Daddan was neck to neck. Fancy a nincompoop like Daddan defeating not only an able but a popular man.

J. L. Nehru, *'A Bunch of Old Letters'*,
Page 51-52

ग्रर्थ है—मैं कल ही इलैक्शन के दौरे से इलाहाबाद लौटा हूं। चुनावों के पूरे परिणाम तो इस पत्र से पहले ही तुम को मिल जायेंगे। हम मद्रास ग्रौर बंगाल में बड़ी संख्या में ग्राये हैं,परन्तु बहुमत में नहीं हैं। बिहार में ग्रभी गणना हो रही है, परन्तु वह मद्रास ग्रौर बंगाल के पीछे नहीं रहेगा। बम्बई ग्रौर मध्य प्रान्त में हमारी बुरी दशा हुई है, परन्तु संयुक्त प्रान्त में तो हमारा (कांग्रेस का) भट्टा ही बैठ गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पंजाब में कुछ अच्छा हाल नहीं होगा। हम वहां सब असैम्बली के स्थान खो देंगे। हमें लाला जी के 'झूठ' बोलने का धन्यवाद करना चाहिए। आसाम के छोटे-से प्रान्त में हमारा अच्छा हाल है। हमारी शक्ति पहले से अधिक होने की आशा है। परन्तु संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में प्रान्तीय कौंसिल में तो पहले भी हमारी हालत पतली थी। इस बार और भी खराब होगी। यहां अपने प्रान्त में कोई भी मेरा सहायक नहीं रहा। यदि मैं अपना पूर्ण समय प्रान्त में देता, तब भी कुछ अधिक आशा नहीं थी। यह मेरे बस का नहीं था। मैं उस प्रचार का जो मालवीय-लाला गुट ने मेरे विरुद्ध चलाया था, विरोध करने की हिम्मत नहीं रखता था। मुझे दूसरे प्रान्तों में भी जाना था। साफ-साफ शब्दों में यह प्रचार किया गया था कि मैं हिन्दू विरोधी और मुसलमानों का सहायक हूं। गुप्त रूप में एक-एक मतदाता को कहा गया कि मैं गो-मांस खाता हूं और मुसलमानों से मेरा योगदान है। गो-हत्या को सार्वजनिक स्थानों में काटने में मेरा योगदान है। श्यामजी ने इस प्रचार में बहुत सहायता की थी। उसने प्रचार किया है कि गो-हत्या के विपरीत कानून का विरोध करने में मेरी सहायता है। वह फैजाबाद क्षेत्र से असैम्बली के लिए खड़ा हुआ था। दूसरे दो प्रत्याशियों में एक स्वराज्य पार्टी का था और एक ददन साहब अमेठी के थे। स्वराजिस्ट एक विद्वान् और विख्यात व्यक्ति था। परन्तु ददन साहब के रुपये ने बाजी जीत ली। श्यामजी की धन में सहायता मालवीय जी करते थे, परन्तु ददन साहब हिन्दू सभा के प्रत्याशी हुए। श्यामजी की तो जमानत जब्त हुई है, परन्तु ददन साहब और स्वराजिस्ट में बराबर का मुकाबिला था। कुछ ही मतों से ददन साहब जीते थे। तनिक विचार करो 'नोन कौमपूप' (Non Compoop) ददन जैसा एक योग्य और विख्यात उम्मीदवार को हरा सकता है।

इस पत्र में कुछ बातें समझने की हैं। मालवीय, लाला लाजपतराय दो विख्यात नेताओं ने नैशनलिस्ट पार्टी की सहायता की थी। यह दल सन् १९२६ में ही संगठित किया गया था। कांग्रेस इसके विरुद्ध बहुत पुराना दल था।

जहां तक 'मालवीय, लाजपत' जैसों के लिए gang और ददन साहब के लिए Non Compoop दुर्वचन कहे गये हैं, वे पण्डित मोतीलाल की भारी निराशा के सूचक हैं। यद्यपि उस वर्ष गांधी जी इलैक्शनों में सक्रिय भाग नहीं ले रहे थे, परन्तु उनकी रुचि कांग्रेस की ओर थी।

जहां तक गो-रक्षा 'बिल' की बात थी, वह निर्वाचनों से कुछ पहले असैम्बली में विचार के लिए उपस्थित हुआ था। मुसलमान तो इसके विरुद्ध थे ही। कांग्रेस वाले तटस्थ रहे थे। अंग्रेजी सरकार तो चाहती ही थी कि 'बिल' असफल हो। इस कारण बिल पास नहीं हो सका।

इसमें कांग्रेस के नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू भी इस 'बिल' के विरुद्ध इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण समझे गये क्योंकि वह तटस्थ रहे।

भगवद्गीता में कहा है कि अकर्म, कर्म का भी और विकर्म का भी सहायक होता है। इस न्याय (logic) से लोगों का कहना कि वे गो-हत्या में सहायक हैं, असत्य नहीं था। कांग्रेस मुसलमानों के खिलाफत आन्दोलन में तो धन और जन से सहायक थी, परन्तु इस बिल में, जिसे हिन्दू दिल से चाहते थे, कांग्रेस की तटस्थता विरोध की ही सूचक थी।

इस कारण हमारा विचार था कि हिन्दुओं के नेता असत्य नहीं कहते थे।

कांग्रेस ने गांधीजी के नेतृत्व में जो कुछ सन् १६२२-२६ तक किया था, उसका जो हिन्दुओं को ज्ञान कराया गया तो एक वर्ष में ही जागृति हुई और जहां पहले कांग्रेस की स्वराज्य पार्टी का हिन्दुओं में बाहुल्य था, वहां वे आधे रह गये। कांग्रेस में दो-चार मुसलमान सदस्य भी थे। इस कारण उनकी संख्या नैशनलिस्ट दल से कुछ ही अधिक थी।

इस नैशनलिस्ट दल के नेता पण्डित मदनमोहन मालवीय थे। उप-नेता लाला लाजपतराय थे।

कांग्रेस दल सन् १६२७ से सन् १६३० तक लैजिस्लेटिव असैम्बली में कार्य करता रहा और उन दिनों जब-जब भी राष्ट्र विरोधी बातें सम्मुख आयीं, जिनमें मुसलमानों का कुछ अपना लाभ होता था, कांग्रेस सदा उन विषयों में राष्ट्र विरोधी व्यवहार अपनाती रही।

एक-दो उदाहरण देकर बात स्पष्ट की जा सकती है। लाहौर में किसी ने एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें हज़रत मुहम्मद साहब के जीवन की कुछ घटनाओं और कथनों का उल्लेख था। इनसे हजरत साहब का अपमान हुआ समझा गया। मुसलमानों ने उस प्रकाशक पर दावा कर दिया कि उसे दण्ड मिलना चाहिए। पंजाब हाईकोर्ट ने उस प्रकाशक को निर्दोष माना। हाईकोर्ट का कहना था कि प्रकाशक ने कुछ भी ऐसा नहीं लिखा जो इस्लामी किताबों में न लिखा हो। इसपर मुसलमान रुष्ट हो गये और किसी मुसलमान ने उस प्रकाशक की हत्या कर दी।

इस पृष्ठभूमि पर केन्द्रीय लैजिस्लेटिव असैम्बली में सरकार ने एक विधेयक उपस्थित कर दिया कि यदि किसी सम्प्रदाय को, किसी लेख पर आपत्ति हो, उस लेख से उस सम्प्रदाय के सदस्यों का दिल दुःखे तो लिखने वाले को एक सहस्र रुपया जुर्माना और एक वर्ष तक की कैद का दण्ड दिया जा सकता है।

कांग्रेस ने इस विधेयक का समर्थन किया और यह विधेयक पारित हो गया। इस कानून में दोष यह था कि इसमें सत्य-झूठ की चिन्ता नहीं की गई थी। झूठी बात लिखनी तो दण्डनीय हो सकती है, परन्तु सत्य बताना भी दण्डनीय हो गया। इसका परिणाम यह हुआ है कि जनता को कई बातों के ज्ञान से वंचित रखना पड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है क्योंकि सत्य ज्ञान से कुछ लोग नाराज होकर यह कह सकते हैं कि उनका दिल दुःख रहा है।

हिन्दू एक स्वतंत्र समाज है। इसमें कई मत-मतान्तर हैं और खुलकर एक दूसरे के विषय में टीका-टिप्पणी की जाती है और इस प्रकार की स्वतंत्र, परन्तु सत्य आलोचना का द्वार इस कानून ने मुसलमान और ईसाई के विषय में करने का बन्द कर दिया। इस प्रकार का कानून बनाने में कांग्रेस भी सहायक हुई थी।

केवल यही नहीं, यह कानून अभी तक भारत के दण्ड विधान में उपस्थित है।

एक अन्य उदाहरण भी दिया जा सकता है। उसी स्वराज्य पार्टी के लैजिस्लेटिव असैम्बली में भाग लेने के दिनों की बात है। पश्चिमोत्तरी सीमा प्रान्त और सिंध को पृथक् प्रान्त बनाने का विचार उपस्थित हुआ। यह इस कारण था कि उन स्थानों पर मुसलमानों की जनसंख्या अधिक थी। सन् १९०३-०४ में पूर्वी बंगाल का पृथक् प्रान्त बनाया गया था। उसमें भी यही नीति स्वीकार की गयी थी। तब तो देश भर में आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था।

अब हिन्दू-मुसलमान के विचार से पृथक् प्रान्त बनाना देश में फूट डलवाने और देश विभाजन की नींव डालना था। इसमें भी कांग्रेस अंग्रेजी सरकार की सहायक हो गयी।

यह ठीक था कि पण्डित मदनमोहन मालवीय के द्वारा हिन्दू नाम पर आह्वान किये जाने ने हिन्दू जनता को उत्साहित किया था। केवल कुछ महीनों के प्रचार से ही कांग्रेस, जो मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए सबकुछ दे देने के लिए तैयार थी, को भारी आघात पहुंचा था। यदि उन्हीं आधार पर नैशनलिस्ट पार्टी कार्य करती रहती तो स्वराज्य-प्राप्ति से पूर्व ही कांग्रेस निस्तेज हो जाती और सन् १९४७ में भारत का चित्र दूसरा होता। परन्तु तत्कालीन हिन्दू महासभा और उनकी नैशनलिस्ट पार्टी हिन्दुत्व का अर्थ न समझती हुई सामयिक ख्याति की चिन्ता करती हुई सिद्धान्त का परित्याग कर बैठी।

सन् १९३० में गांधीजी ने जब कांग्रेस की हालत पतली देखी तो नमक सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। सन १९२२ का असहयोग आन्दोलन व्यर्थ गया था। उसने मुसलमानों को भड़काया था और भड़के हुए मुसलमान हिन्दुओं से झगड़ा करने लगे थे। इसी प्रकार नमक सत्याग्रह ने अंग्रेज शासकों को भड़काया और वे मुसलमानों के साथ-साथ अछूतों और सिक्खों को भी भड़काने लगे।

नमक सत्याग्रह के पहले इंग्लैण्ड के प्राईम मिनिस्टर ने गोलमेज कान्फरेंस का प्रस्ताव रखा था। उसमें हिन्दुस्तानी एक तरफ और अंग्रेज दूसरी ओर बैठ भावी सुधारों के लिए विचार करने वाले थे। गांधीजी और मोतीलाल नेहरू ने इस निमंत्रण को अस्वीकार किया। ये लोग चाहते थे कि अंग्रेज भारत छोड़ने पर पहले तैयार हो जायें, पीछे कांग्रेस इसमें सम्मिलित हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाई यह थी कि अंग्रेजी सरकार ने कांग्रेस के विरुद्ध अछूत, मुसलमान, सिक्ख और राजे-महाराजे इकट्ठे कर रखे थे। गांधी जी के पास उनको समझाने का कोई विचार नहीं था। मुसलमान तो सरकार के पिट्ठू सन् १८८४ से बन रहे थे। इस कारण कहा जा सकता है कि वह कांग्रेस के साथ अथवा राष्ट्रीयता से प्रभावित नहीं थे। उस समय तक अछूत और सिक्ख कांग्रेस के विरुद्ध नहीं थे। परन्तु कांग्रेस का व्यवहार मुसलमानों के पक्ष में देख ये दोनों समुदाय भी बिगड़ रहे थे।

होना यह चाहिए था कि गोल मेज कान्फरेंस में जाने से पूर्व इन तत्त्वों से मेल-मुलाकात और इनको राष्ट्रीय धारा में सम्मिलित किया जाता। इस ओर तो ध्यान नहीं दिया गया और अंग्रेजों को कहा जाता रहा कि वह कांग्रेस को राज्य दे दें।

हिन्दू दल जो लैजिस्लेटिव असैम्बली में था, उसने एक महान् भूल कर दी। पण्डित मदनमोहन मालवीय के दल ने नमक सत्याग्रह के समय कांग्रेस के साथ असैम्बली का बहिष्कार कर त्याग-पत्र दे दिया। यह महान् भूल थी। इससे पहले भी जब साईमन कमीशन आया था तो नैशनलिस्ट दल ने कमीशन का बहिष्कार कांग्रेस के साथ मिलकर किया था।

यह समय था देश में कांग्रेस की थोथी उद्देश्य-रहित नीति का भण्डाफोड़ करने का। यह ठीक है कि कांग्रेस के प्रचार के विरुद्ध प्रचार करने के लिए धन और जन की आवश्यकता थी। इस समय देश के वास्तविक हित को कमीशन के सामने निर्भीक शब्दों में कहने का जो प्रभाव होता, वह कांग्रेस के साथ मिलकर मौन रहने से नहीं हुआ।

पण्डित मदनमोहन मालवीय अथवा लाला लाजपतराय को चाहिए था कि कमीशन को लिखित वक्तव्य देते कि वे चाहते हैं कि देश में सब देशवासियों हिन्दू, मुसलमान, ईसाई इत्यादि सबको बराबर का अधिकार मिलना चाहिए। उनको कहा जाता कि कांग्रेस ने सन् १९१६ में मुसलमानों के लिए पृथक् स्थिति मानकर देश की विशाल जनता के हित के विरुद्ध कहा है, देश किसी भी समुदाय अथवा मजहब को विशेष अधिकार देने के विरुद्ध है। यह देश की महान् सेवा होती। इसे कहने के स्थान गला फाड़-फाड़कर यह कहना 'साइमन वापस जाओ' (Simon go back) वस्तुस्थिति को न समझना और अपने को मूर्ख सिद्ध करने के तुल्य था।

आखिर कांग्रेस भी तो यही कहती थी कि अंग्रेज यहां से चले जायें। मालवीय जी को इसके साथ यह जोड़ देना चाहिए था कि न केवल अंग्रेज जायें, वरन् किसी को कोई विशेष अधिकार न देकर जायें।

कठिनाई यह थी कि देश के सम्मुख मिथ्या विषय रखकर इसे भ्रमित किया जाता रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साईमन कमीशन के बहिष्कार और असैम्बली से त्याग-पत्र देकर बाहर आ जाने से नैशनलिस्ट दल विखण्डित हुआ और फिर शून्य में विलीन हो गया। सामान्य जनता में यह प्रभाव हुआ कि नैशनलिस्ट दल और कांग्रेस में कोई भेद नहीं है तो फिर दल की आवश्यकता क्या थी ?

इससे हिन्दू पक्ष जो राजनीति में मज़हब के नाम पर अथवा जाति के विचार पर अधिकारों को नहीं मानता था, उसका विरोधी हो गया था।

जन-ख्याति के लिए सिद्धान्तहीनता स्वीकार की गयी थी। कांग्रेस का तो सिद्धान्त ही यह है कि अवसर हो तो सिद्धान्तों की अवहेलना की जा सकती है। जन-ख्याति की यही बात सन् १९२२ में की गयी थी। मुसलमानों में ख्याति प्राप्त करने के लिए सिद्धान्त का त्याग किया गया था। साईमन कमीशन के समय और राउण्ड टेबल कान्फरेंस के बहिष्कार के समय भी ख्याति प्राप्त करने के लिए सिद्धान्तों की बात छोड़ी गयी थी।

साईमन कमीशन के सामने स्पष्ट बात कहने का जब समय था, तब ऐसा न कर नारेबाजी करना हिन्दुत्व के लिए घातक सिद्ध हुआ था।

नैशनलिस्ट पार्टी (Nationalist Party) हिन्दुत्व का राजनीतिक पक्ष था। हमने बताया कि अपने में हीन भावना के कारण एवं अपने महान् उद्देश्य को भूल कर तथा गांधीजी के हो-हल्ला के पीछे लगकर यह दल निस्तेज हो गया। यद्यपि नैशनलिस्ट दल का मूल हिन्दू महासभा तो स्थापित रही, परन्तु इसमें वह तेज दिखाई नहीं देता था, जो श्री सावरकर और डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी के कारण उत्पन्न हुआ था। इस पर भी यह जीवित है और अपने वार्षिक अधिवेशन करती है।

हिन्दू महासभा में विशेष जीवन डालने वाले थे पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, श्री सावरकर, भाई परमानन्द और डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी। मालवीय जी ने और लाला लाजपतराय ने अपनी एक टांग गांधीजी के पीछे लगाकर कांग्रेस में टिका रखी थी। उनका कार्य दो नौकाओं पर सवारी करने वाले की भांति सफल नहीं हुआ। श्री सावरकर अपने ही सहयोगियों के भ्रमपूर्ण व्यवहार के कारण प्रभावहीन होने लगे थे। इसका लाभ उठाकर हिन्दुओं को हिन्दू नेताओं के विरुद्ध भड़काया जाने लगा था। भाई परमानन्द जैसे दृढ़ निष्ठ एवं देवता-स्वरूप नेता के गले में जूतों का हार पहनाने में कांग्रेसी गर्व अनुभव करने लगे थे।

स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् हिन्दू महासभा श्री एन० सी० चैटर्जी के पल्ले पड़ी। वे नीम कम्युनिस्ट थे और हिन्दू महासभा की गाड़ी चला नहीं सके। भाई परमानन्द जी को पाकिस्तान बनने का इतना गहरा आघात लगा कि वे बीमार हुए और सन् १९४८ के आरम्भ में ही स्वर्गवासी हो गये। इस प्रकार हिन्दुत्व के पुनरुत्थान का यह प्रयास सुषुप्ति अवस्था में हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ—१

एक अन्य वृहद् प्रयास हिन्दुत्व को जागृत करने का किया गया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रवर्त्तक डॉक्टर हैडगेवार महाराष्ट्र के एक वीर पुरुष थे। कहते हैं कि सन् १९२३ में देश में व्यापक हिन्दू-मुसलमान दंगे हो रहे थे, तब एक दिन डॉक्टर साहब अपने मकान के बाहर मुसलमानों को हिन्दुओं को मारते-पीटते देख सहन नहीं कर सके और खिड़की से ही कूदकर सड़क पर आ गये। उन्होंने भागते हुए हिन्दुओं को एकत्रित किया और मुसलमानों से भिड़ गये तथा उनको मार-मारकर भगा दिया।

इस एक घटना ने डॉक्टर साहब के मन में हिन्दुओं को अपनी रक्षा के लिए संगठित करने का विचार बना दिया। उन्होंने हिन्दू युवकों को जातीय रक्षा के लिए बौद्धिक और शारीरिक रूप से तैयार करने की एक योजना बनाई। योजना का नाम रखा गया—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ।

यह संगठनात्मक कार्य सन् १९२५ में आरम्भ हुआ। अभी तक यह चल रहा है। यह समय की मांग थी।

वैसे तो इस्लाम, जैसा कि हमने पूर्व के अध्यायों में बताया है, आरम्भ में एक आक्रामक विचारधारा नहीं थी। हज़रत मुहम्मद साहब के कार्यों को चलाने वाले द्वितीय खलीफा ने इसे एक आक्रामक संगठन बना दिया था।

हमने बताया है कि इस आन्दोलन का मुख तोड़ उत्तर भारत में हिन्दुत्व ने दिया था। इस संघर्ष में इस्लाम की राजनीतिक पराजय तो नहीं हुई, परन्तु बौद्धिक विजय हिन्दुत्व की हुई थी।

इस आक्रामक तरंग का मुकाबिला फ्रांस में भी सफलतापूर्वक किया गया था। इस्लामी लहर यूरोप में सीधे फिलीपाईन और टर्की से तो बढ़ नहीं सकी। परन्तु यह तरंग अफ्रीका से उत्तरी देशों को पराजित करती हुई मोराको में पहुंच गयी। मोराको से सागर पार कर यह स्पेन में जा पहुंची। स्पेन को विजय कर यह फ्रांस में जा धमकी। परन्तु वहां दूर्अंज के मैदान में इस्लाम और ईसाइयत में घोर युद्ध हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस युद्ध ने इस्लाम का मुख मोड़ दिया। इस्लाम एक मज़हबी और राजनीतिक आन्दोलन है। मज़हब राजनीति के कंधों पर चढ़कर चलता है। अतः जब फ्रांस में इसकी राजनीतिक पराजय हुई तो यह मज़हब बढ़ नहीं सका।

भारत में यह राजनीति में विजयी होता रहा। परन्तु इसका मज़हब यहां हिन्दुत्व ने रोक दिया। यह हम बता चुके हैं हिन्दुत्व मज़हब नहीं है। यह एक सांस्कृतिक आन्दोलन है। यह राजनीति के बिना भी चल सकता है और चलता रहा है।

अतः इसने इस्लाम का सांस्कृतिक मुकाबिला किया और उसको कुण्ठित कर दिया। राजनीति में हिन्दुत्व पराजित हुआ था और इस देश में एक हजार वर्ष तक इस्लाम का राज्य चलता रहा। हिन्दुओं ने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए राजनीतिक शक्ति में उन्नति और विकास नहीं किया था।

इस्लामी काल में एक के उपरान्त दूसरा सांस्कृतिक आन्दोलन उठता रहा, परन्तु राजनीति की दिशा में हिन्दू ने ध्यान नहीं दिया। तुलसी, कबीर, मीरा, पाण्डुरंग, गुरु नानक इत्यादि अनेक साधु-संत महापुरुष हुए परन्तु उन्होंने हिन्दुत्व के बौद्धिक पक्ष को ही देखा। इस प्रकार हिंन्दुत्व जीवित तो रहा, परन्तु पराधीन होकर ही।

इस बौद्धिक पक्ष पर आघात ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा के माध्यम से किया। अंग्रेज ने हिन्दू समाज की बुद्धि को ही कुण्ठित करने का यत्न किया। इसके लिए सरकार ने बच्चों की शिक्षा अपने हाथ में ले ली और सरकारी सेवाएं केवल सरकारी शिक्षा से शिक्षितों को ही देने का नियम बना लिया। इस प्रकार हिन्दुत्व के बौद्धिक पक्ष को दुर्बल कर देना आरम्भ कर दिया।

अंग्रेज सरकार की इस नीति को स्वामी दयानन्द ने समझा और उन्होंने अपने बौद्धिक उत्थान के साथ-साथ सरकार बदलने का आन्दोलन चलाया। इसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं।

परन्तु हिन्दू महासभा मुख्यतः राजनीतिक कार्य करती रही और इसने बौद्धिक कार्य शून्य के समान ही किया। राजनीति में विरोध असफल हुआ क्योंकि अंग्रेज सरकार ने शिक्षा को सरकार के अधीन कर बौद्धिक कार्य को भी अपने अधीन कर लिया था। अतः सन् १९२४ से सन् १९४७ तक इसके आन्दोलन को पनपने नहीं दिया गया। इस प्रजातांत्रिक काल में राजनीति जन-जन के आश्रय होने के कारण बिना बौद्धिक आधार के चल नहीं सकी। कारण यह कि जनमत को साथ लेना पड़ता है। कांग्रेस राज्य तो चला रही है, परन्तु जहां तक इसके सिद्धान्त का सम्बन्ध है, यह अंग्रेजियत का पोषण कर रही है। यह इस कारण कि इसने शिक्षा को उसी ढांचे पर रखा हुआ है जिस पर अंग्रेजी सरकार रखे हुए थी।

इस कारण यदि कांग्रेस अथवा कांग्रेस के नाम पर राज्य करने वालों ने अपने बौद्धिक कार्य को सुदृढ़ नहीं किया तो यह भारत में इस्लाम के सम्मुख पराजित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जायेगी।

यहां भारत में कांग्रेस राजनीतिक आधार पर राज्य करना चाहती है। यह कर नहीं सकेगी। कारण यह कि प्रजातांत्रिक राज्य पद्धति में जनता केवल राजनीति से ही प्रभावित नहीं होती। यह मनोद्‌गारों से चलती है और मन बुद्धि से अथवा कामनाओं से प्रेरित होता है।

इस कारण कांग्रेसी शासन दिन-प्रतिदिन अव्यवस्थित हो रहा है। लोगों की बुद्धि अंग्रेजी शिक्षा से बन रही है। और शासन को विवश हो अपनी राजनीति बदलनी पड़ रही है। इस कारण देश में सांस्कृतिक कई धाराएं चल पड़ी हैं। अंग्रेजी डैमोक्रेसी की तो है। कांग्रेस उसी के आश्रय जी रही है। इसपर भी पढ़े-लिखे अंग्रेजी शासन की भेदभाव की नीति पढ़ते हैं तो अंग्रेजों के विरुद्ध हो जाते हैं। उसके स्थान बहुतसंख्यक हिन्दुत्व की सांस्कृतिक धारा चलती तो शासन पद्धति वह न होती जो अब है।

यह शासन पद्धति और इस शासन के उद्देश्य खिचड़ी हैं। कुछ अंग्रेजी संसदीय पद्धति के भक्त हैं। उसमें कम्युनिज्म, अभिप्राय यह कि राज्य द्वारा नियंत्रण के भक्त हैं। इसमें इस्लाम अपनी टांग अड़ा रहा है और हिन्दुत्व अपना बौद्धिक विकास न होने के कारण दीवार के साथ धकेला जा रहा है।

महर्षि स्वामी दयानन्द के बौद्धिक प्रचार का विरोध अंग्रेजी सरकार ने तो किया ही था, साथ ही अंग्रेजी ढंग से शिक्षित हिन्दू भी करते थे। पौराणिक हिन्दू भी करते थे और मुसलमान तथा ईसाई भी करते थे। स्वामी दयानन्द की स्थापित आर्यसमाज के नियम शुद्ध हिन्दुत्व के आधार पर हैं। इनके राजनीति का केन्द्र-बिन्दु भी है। वह आर्यसमाज के दस नियमों में से पांच नियमों (नियम छः से दस तक) में निहित हैं। ये नियम है—

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए; किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

परन्तु आर्यसमाज जब से मठ बना है, अपने नियमों को भूल गया है। हम समझते हैं यह बौद्धिक कार्य आर्यसमाज कर नहीं रहा।

वर्तमान सरकार तो बौद्धिक कार्य को चिमटे से भी छूना नहीं चाहती। वह तकनीकी ज्ञान को ही सबकुछ समझती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दयानन्द ने प्राचीन संस्कृति को आधार वैसे ही अपनाया जैसे समय-समय पर देश तथा हिन्दू जाति में ऋषि, महात्मा, साधु इत्यादि अपनाते रहे थे। इसके साथ ही उन्होंने स्वराज्य के लिए भी आन्दोलन किया। जब तक आर्यसमाज दोनों को पकड़े रही, सरकार अंग्रेजी इनसे डरती रही। यह कांग्रेस से नहीं डरती थी। डरती थी तो तिलक से और आर्यसमाज से। दोनों की राजनीति सांस्कृतिक आधार पर थी। मिस्टर चिरोल की रिपोर्ट इस बात की साक्षी है।

स्वामी दयानन्द के अनुयाइयों ने किस प्रकार बाजी हारी, इसका वर्णन हम कर चुके हैं। केवल सांस्कृतिक आन्दोलन तब चल सकते हैं जब शिक्षा सरकार के हाथ से छीन ली जाये। तब ही राजनीति प्रजातांत्रिक आधार पर चल सकती है।

हिन्दू महासभा क्यों असफल रही? हमारा दृढ़ मत है कि इसका केवल राजनीति से वास्ता रह गया था। इस प्रजातांत्रिक समाज में राजनीति जनमत पर निर्भर करती है और जनमत शिक्षा से प्रभावित होता है। शिक्षा पर प्रभाव सरकार का है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में विशेषता यह है कि यह जहां बौद्धिक कार्यक्रम चलाता है, वहां यह राजनीति से भिड़ने के लिए भी तत्पर है। यही कारण है कि सरकार इससे भयभीत है। यह निश्चित है कि जिन दिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने यह निश्चय किया था कि यह राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करेगा, यह प्रभावहीन होने लगा था।

अंग्रेजी राज्य काल में संघ न तो सरकार अंग्रेजी से टक्कर लेना चाहता था और न ही देश की राजनीतिक संस्था कांग्रेस में सम्मिलित होना चाहता था। कदाचित् हो सकता भी नहीं था। कांग्रेस की राजनीति मिथ्या सिद्धान्तों के अधीन चलती थी।

कांग्रेस गांधी के राम-नाम के नीचे जनमत बटोर राजनीति में नेहरू परिवार के अधीन चलती रही। परन्तु यह तो जनमत से छलना थी। नाम राम-नाम का था, होता वही था जो नेहरू परिवार चाहता था। परिणामस्वरूप गांधीजी की छलना जबतक चलती रही, जबतक छलना का प्रभाव रहा, काम चलता रहा और धीरे-धीरे कांग्रेस राम-नाम से विलग हो अब कार्ल मार्क्स आदि समाजवादियों के बौद्धिक कार्य को आश्रय बना जनता पर अधिकार रखे हुए है। परन्तु समाजवाद का आधार है शारीरिक सुख-सुविधा। यह बौद्धिक प्रेरणा नहीं है। यह इन्द्रियों के सुख की प्रेरणा है। यही कारण है कांग्रेस दिन-प्रतिदिन मुसलमानों का आश्रय लेने पर विवश हो रही है।

जहां तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सम्बन्ध है, यह समस्या को समझता तो ठीक है कि इस वर्तमान युग में राजनीति बौद्धिक आधारों पर ही चल सकती है, परन्तु देखना यह है कि इनका बौद्धिक आधार क्या वास्तव में बौद्धिक है अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

168025 Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

ऐसे ही हैं जैसे कम्युनिज्म का आधार है।

स्वराज्य-प्राप्ति से पूर्व देश की राजनीति थी कांग्रेस के हाथ में और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कांग्रेस का पोषक था। कम-से-कम प्रत्यक्ष रूप में था।

सन् १९४५ में मेरठ के एक शिविर में संघ के सरसंघचालक श्री गोलवलकर ने गांधी जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

उस काल में संघ का बौद्धिक था हिन्दू मत-मतान्तरों का। गुरु रामदास का नाम यह लेते थे, परन्तु गुरु रामदास की बौद्धिक शिक्षा राम-नाम तक ही सीमित थी। राम-कृष्ण के नाम तो देश के सब भागों में चलते थे। मीरा और तुलसी इसी नाम को रटते रहे। मीरा कृष्ण के नाम को और तुलसी राम के नाम को। इनका राजनीति से कुछ भी सम्पर्क नहीं था। इन्होंने इस्लाम के मज़हब का सफल विरोध किया, परन्तु इस्लाम की राजनीति पर इनका प्रभाव शून्य-समान था।

इसी प्रकार शिवाजी की कूटनीति का प्रभाव राजनीति पर तो हुआ था। परन्तु उनके बौद्धिक व्यवहार का थोथापन उनके राज्यारोहण के समय के रीति-रिवाज से प्रकट होता है। इसका कारण स्पष्ट है कि गुरु रामदास का राम केवल योद्धा था।

अत: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का बौद्धिक भी नाम मात्र का है और जाति के शरीर को बचाने का संगठन, जिसे हम राजनीति कहते हैं, वह ठीक है। गुरु रामदास के राम और गांधी जी के राम एक हो गये। यही कारण है कि स्वराज्य मिलने के समय बीस-पच्चीस लाख स्वयंसेवक रखते हुए भी संघ कांग्रेस का विरोध देश विभाजन में नहीं कर सका।

यत्र-तत्र पंजाब, उत्तर प्रदेश, दिल्ली में हिन्दू जनता की रक्षा का प्रयत्न होता रहा, परन्तु यह जनमानस का आन्दोलन नहीं बन सका। हमारा मत है कि संघ का आन्दोलन स्वराज्य की रूप-रेखा पर किसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सका है।

देश में बीस-पच्चीस लाख स्वयंसेवकों की बात सुनकर मन में तरंग उत्पन्न तो होती है, परन्तु हमारा विचार है कि स्वतंत्र भारत के संविधान पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं।

यह बात स्वराज्य के उपरान्त, विशेष रूप में सन् १९४८ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को अवैधानिक घोषित करने के उपरान्त संघ के कुछ कार्यकर्ताओं के मन में भी उत्पन्न हुई। जिन दिनों संघ पर प्रतिबन्ध था, संघ के सहस्रों स्वयंसेवक बंदीगृह में थे और संघ के सर-संघचालक श्री गोलवलकर भी जेल में थे, तब कुछ एक के मन में आया कि कांग्रेस का स्थानापन्न ढूंढ़ना चाहिए और संघ को एक राजनीतिक संस्था में बदलने का विचार उत्पन्न हुआ।

उन दिनों स्वर्गीय पण्डित मौलिचन्द्र शर्मा संघ और सरकार के बीच मध्यस्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बने थे। यह उनका भी विचार था कि संघ को एक राजनीतिक दल के रूप में आगे आना चाहिए। परन्तु संघ के तत्कालीन नेता इस पर तैयार नहीं हुए। श्री गोलवलकर की यह घोषणा हुई कि संघ केवल सांस्कृतिक कार्य ही करेगा। इस आश्वासन पर प्रतिबन्ध हटा और संघ का कार्य नियमित चलने लगा।

इस पर भी संघ के स्वयंसेवकों के मनों के भीतर-ही-भीतर यह बात सुलग रही थी कि एक राजनीतिक दल, जो संघ से पोषित हो, बनाना चाहिए।

राजनीतिक दल के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कार्यक्षेत्र में आये, ऐसा समझने वालों के एक नेता बन गये श्री वसन्तराव ओक। यह उत्तरी भारत में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संघ-चालक थे। इनका सम्पर्क उत्तरी भारत की सामान्य हिन्दू जनता से संघ के अन्य कार्यकर्ताओं की अपेक्षा अधिक व्यापक था। अतः उनका विचार था कि यदि संघ राजनीतिक क्षेत्र में आयेगा तो हिन्दू जनता संघ को सहयोग देगी।

परन्तु संघ के नेता हिन्दू महासभा से उलट व्यवहार रखते प्रतीत हुए। जहां हिन्दू महासभा हिन्दुत्व की राजनीति को ही चलाना चाहती थी, वहां राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ केवल मात्र हिन्दू नाम पर संगठन से सफलता प्राप्त करने का यत्न करता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजी शिक्षा, जो स्कूलों-कालेजों में दी जाती थी, उसकी छाप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर भी थी। उन स्कूलों में धर्म-कर्म को मज़हब मान त्याज्य समझा जाता था और सांसारिक अभ्युदय को ही मनुष्यता का लक्षण माना जाता था। साथ ही, सरकारी शिक्षा केन्द्रों में अभ्युदय उच्च सरकारी नौकरी प्राप्त करना था। कांग्रेस सन् १९१९ तक यही करती रही थी। सन् १९१९ के उपरान्त राजकीय उच्च सेवा कार्य पाने के साथ उच्च राजनीतिक पद पाने की लालसा भी सम्मिलित हो गयी थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने इसके साथ एक बात यह सम्मिलित कर दी थी कि संघ के नेताओं की छत्रछाया में हिन्दू समाज का उद्धार होगा।

अन्यथा 'सदा वत्सले मातृभूमे' कहने वालों ने कभी मातृभूमि के उद्धार की कल्पना की है, दिखाई नहीं देता।

दान-दक्षिणा, मन्दिर, धर्मशालाएं, उत्सव-मेले तो देश और हिन्दू समाज में बहुत होते रहे हैं, परन्तु इन सबके होते हुए भी जातीय उद्धार के विषय पर क्या विचार किया जाता था, स्पष्ट नहीं है।

हम समझते हैं कि सन् १९४८ तक संघ ने देश की राजनीति पर कभी विचार किया ही नहीं था। इसकी कोई राजनीति थी ही नहीं और यदि थी तो यह वही थी जो कांग्रेस में श्री जवाहरलाल की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १६५० में डॉक्टर मुखर्जी ने भारत मंत्रिमण्डल से त्याग-पत्र दिया तो श्री वसन्तराव ओक के विचार के लोगों ने हिन्दू राजनीतिक दल संघ की छत्रछाया में बनाने का विचार बना लिया। वसन्तराव और उनके साथ कुछ अन्य लोग डॉक्टर मुखर्जी जी से मिले और एक राजनीतिक दल, जिसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का आशीर्वाद प्राप्त हो, बनाने का प्रयास होने लगा।

परन्तु यह एक तथ्य है कि श्री वसन्तराव और उसके विचार के लोगों को संघ के केन्द्र के लोगों ने पसन्द नहीं किया और राजनीतिक दल के निर्माण की बात में ढील होती रही।

भारत-विभाजन के समय श्री बलराज मधोक कश्मीर, श्रीनगर कॉलेज में प्राध्यापक थे। वह संघ के प्रमुख कार्यकर्ता थे। श्री मधोक के प्रयास से कश्मीर में पाकिस्तानी आक्रमण के समय श्रीनगर की जनता का मनोबल स्थिर रखने में सहायता मिली थी। उन दिनों शेख अब्दुल्ला कश्मीर के महाराजा का बंदी था।

कश्मीर की उस समय स्थिति ऐसी थी कि इसका बाहर से सम्पर्क पाकिस्तान में से ही था और भारत से सीधा मार्ग श्रीनगर को आने-जाने के लिए नहीं था। अंग्रेजी राज्य-काल में सब मार्ग पंजाब में से ही होकर बने थे और आवश्यक सामान उधर से ही राज्य में जाता था। यद्यपि कश्मीर की एक सीमा भारत के साथ भी लगती थी, इस पर भी इधर से कोई सड़क नहीं थी। देश के विभाजन होते ही कश्मीर के लिए बाहर से आने वाले सामान, विशेष रूप में नमक, चीनी, गेहूं और पैट्रोल की समस्या थी। पाकिस्तान ने कश्मीर को विवश करने के लिए कि कश्मीर का सम्बन्ध पाकिस्तान से हो जाये, आवश्यक सामान वहां जाने रोक दिये थे। यहां तक कि स्वराज्य-पूर्व का खरीदा सामान, जो कश्मीर रियासत को जा रहा था, वह भी रोक दिया गया।

ऐसी स्थिति में भारत के गृहमंत्री श्री पटेल का विचार था कि कश्मीर की रसद और पैट्रोल से सहायता करनी चाहिए और कश्मीर के महाराजा को भारत के साथ सम्बन्ध बनाने का अवसर और प्रोत्साहन देना चाहिए। महाराज कश्मीर ने शस्त्रास्त्र के लिए भी मांग की हुई थी, भारत के मंत्रिमण्डल ने स्वीकार भी कर ली थी, परन्तु वह भेजा नहीं जा रहा था। क्यों? इस विषय में कोई लिखत-पढ़त विदित नहीं। महाराज का एक पत्र ही है जिसका उल्लेख श्री मेहरचन्द महाजन ने अपनी पुस्तक "लुकिंग बैक" में किया है। महाराज ने लिखा था कि भारत ने वचन दिया था कि सामान भेजेंगे, वह अभी तक नहीं भेजा।

वास्तविक स्थिति यह थी कि भारत के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल शेख अब्दुल्ला को कश्मीर का प्रधानमंत्री बनाना चाहते थे जो महाराज का घोर विरोधी था। महाराज ने उसे एक वर्ष पूर्व रियासत में बग़ावत फैलाने के अपराध में बंदी बनाया हुआ था। जब महाराज ने रसद, पैट्रोल और शस्त्रास्त्र के लिए पत्र लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो जवाहरलाल जी का यह कहना था कि पहले वह शेख अब्दुल्ला को छोड़ दे।

मेहरचन्द महाजन लिखते हैं कि उनके कश्मीर के प्रधानमंत्री बनते ही श्री जवाहरलाल ने राजा को यह राय दी थी कि शेख साहब को बिना शर्त के छोड़ देना चाहिए। शेख छूटा तो महाराज से मिलने गया। इस भेंट का वृत्तान्त श्री महाजन ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार लिखा है—

Before leaving Srinagar for New Delhi on 13th or 14th of October, he and Begum Abdullah sought an interview with His Highness. They were duly received at the Palace and were presented to the Maharaja with palace formalities. The Sheikh Sahib had desired an interview with His Highness alone. I had advised him to receive the Sheikh in private but he had insisted on my presence when the Sheikh came for the interview. I was sure that Sheikh Abdulla would resent our presence. He showed his resentment not only in his talk, but also by his somewhat rude behaviour towards me and the Deputy Prime Minister. During the talk he made no secret of his view that it was wholly unnecessary to engage a Prime Minister from outside Kashmir, or to retain a Deputy Prime Minister, also a retired member of the Punjab Provincial Service. The burden of his talk was that His Highness should trust him and hand over the administration of the State to him.

Mehar Chand Mahajan, '*Looking Back*', **Page 129-30**

अर्थ है—श्रीनगर से जाने से पूर्व १३ अथवा १४ अक्टूबर को उसने और बेगम अब्दुल्ला ने महाराज से मिलने की इच्छा प्रकट की। उनका उचित रूप से महल में स्वागत किया गया। शेख की यह इच्छा थी कि वह महाराज से पृथक् में मिले। मुझे विश्वास था शेख मेरी उपस्थिति इस भेंट के समय न पसन्द करेगा और मैंने महाराज को यह राय दी थी कि वे शेख साहब से पृथक् में भेंट करें, परन्तु महाराज ने मेरे वहां रहने पर आग्रह किया। शेख ने न केवल अपनी नाराजगी ही प्रकट की, वरन् मेरे साथ और नायब प्राईम मिनिस्टर के साथ अशिष्टता का व्यवहार भी किया। उसने ही कहा कि महाराज ने रियासत से बाहर के व्यक्ति को प्राईम मिनिस्टर व्यर्थ में बनाया है और डिप्टी प्राईम मिनिस्टर को, जो पहले पंजाब सरकार की प्रान्तीय सेवा में रहा है, रखकर ठीक नहीं किया। 'हिज हाईनेस' को उस पर विश्वास करना चाहिए था और उसे प्राईम मिनिस्टर बनाना चाहिए था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब अभी भारत में अंग्रेजी राज्य था और अंग्रेज भारत छोड़ने की योजनाएं बना रहे थे, तब शेख साहब कश्मीर राज्य में बग़ावत फैलाने का यत्न कर रहे थे। उस समय के हालात को देखने वाले बताते हैं कि महाराज और महारानी के लिए गंदी गालियां शेख साहब के अनुयाइयों ने दीवारों पर लिख रखी थीं। ऐसी अवस्था में शेख साहब को बंदी बनाया गया था।

अब कश्मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण के समय शेख साहब का कहना कि उनको कश्मीर का प्रधान मंत्री बनाना चाहिए था, महाराज से अस्वाभाविक मांग थी, और जवाहरलाल नेहरू जी का कश्मीर की सहायता करने से पूर्व शर्त रखना कि शेख साहब को ही प्रधान मंत्री बनाया जाये, स्थिति का दुरुपयोग ही था।

महाराजा क्यों भारत से सम्बन्ध बनाना नहीं चाहते थे ? इसके विषय में कुछ लिखित प्रमाण तो नहीं हैं, परन्तु तब की स्थिति यह बताती है कि महाराज को यदि पाकिस्तान पर विश्वास नहीं था तो भारत के प्रति अविश्वास में भी स्पष्ट कारण था।

(१) सन् १९४६ में जब कैबिनेट मिशन भारत के नेताओं के साथ बातचीत करने आया हुआ था, उस समय उस आवश्यक काम को छोड़कर पण्डित जवाहरलाल, शेख अब्दुल्ला की हिमायत करने कश्मीर में जा पहुंचे थे। यह तो कोई अन्धा भी समझ सकता था कि यदि उस समय रियासत शेख अब्दुल्ला के हाथ में चली जाती तो कश्मीर देश के बंटवारे में निश्चय से पाकिस्तान में सम्मिलित हो जाता।

(२) लार्ड माउण्टबैटन, जो उस समय भारत के वायसराय थे, स्पष्ट रूप में महाराज को यह कह चुके थे कि कश्मीर महाराज को कश्मीर रियासत पाकिस्तान के साथ संयुक्त कर लेनी चाहिए।

(३) जवाहरलाल और गांधी जी ने देश-विभाजन के पूर्व दोनों देशों की आबादी की अदला-बदली का कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया था। पंजाब में सीमा के दोनों ओर एक प्रकार का गृहयुद्ध चल रहा था। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे की हत्या कर रहे थे।

(४) चौथी बात यह थी कि जवाहरलाल और गांधी हिन्दुओं के यहां जाने की चिन्ता न कर मुसलमानों को बचाने का यत्न कर रहे थे।

ऐसी स्थिति में महाराज कश्मीर ने यदि भारत के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ा तो विस्मय करने की बात नहीं। महाराजा हिन्दू था और वह भारत के नेताओं की हिन्दुओं के प्रति अकर्मण्यता को देख, भारत से सम्बन्ध जोड़ने में डरता था।

यह ठीक था कि वल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल और गांधी जी से इस विषय में मतभेद रखते थे, परन्तु गांधी जी और श्री नेहरू ने महाराज को भारत सरकार और जनता की दृष्टि में हीन सिद्ध करने का सदैव यत्न किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कश्मीर की घटना का यह लम्बा वृतान्त लिखने का कारण यह है कि तत्काल की कांग्रेस के हिन्दुत्व के प्रति व्यवहार को स्पष्ट किया जाये और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के व्यवहार का अर्थ समझा जाये।

श्री बलराज मधोक उस समय श्रीनगर में कॉलेज में प्राध्यापक थे और संघ के कार्यकर्ता थे। पाकिस्तानी सेना बढ़ती-बढ़ती बारहमूला तक पहुंच चुकी थी। श्रीनगर में बिजली बन्द हो जाने से सर्वथा अन्धकार था। कश्मीर की मुसलमान सेना राजा की सेना छोड़ आक्रान्ताओं से जा मिली थी। इस भीड़ के समय श्री मधोक वहां श्रीनगर में हिन्दुओं के मनोबल को स्थिर रखने का, अपने स्वयंसेवकों के साथ, यत्न कर रहे थे। भय था कि नगर के मुसलमान ही हिन्दुओं की लूट-मार न मचा दें।

जब भारतीय सेनाएं श्रीनगर पहुंचीं तो उनके साथ ही शेख अब्दुल्ला वहां आया और उसने सर्वप्रथम यह कार्य किया कि श्री मधोक के वारण्ट निकाल दिये। यह तो घटनावश था कि श्री मधोक को इसकी सूचना पकड़े जाने से पूर्व मिल गयी और वह वहां से बाहर सुरक्षित निकल सके। इसके उपरान्त मधोक के परिवार को वहां से निकल जाने की आज्ञा हो गयी।

इन प्रोफेसर मधोक के श्रीनगर के कार्य को संघ के उच्च अधिकारियों ने पसन्द नहीं किया था।

डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने पूर्वी पाकिस्तान के मुसलमानों द्वारा वहां के हिन्दुओं के कत्ले-आम और हिन्दुओं का वहां से भागकर पश्चिमी बंगाल में आने पर पाकिस्तान को इस बात से रोकने के लिए मंत्रिमण्डल में आवाज उठाई थी। डॉक्टर मुखर्जी का यह विचार था कि यदि वहां से जान बचाने के लिए भागकर आये हिन्दुओं को पाकिस्तान वापस न ले और उनकी सम्पत्ति उनको न दिलाये तो इन हिन्दुओं को बल प्रयोग कर बसाया जाये। इस पर नेहरू जी और मुखर्जी में मंत्रिमण्डल की बैठक में ही तू-तू, मैं-मैं हो गयी और इससे डॉक्टर साहब ने मंत्री पद से त्याग-पत्र दे दिया।

इस पर संघ के श्री वसन्त राव ओक और कुछ अन्य कार्यकर्ताओं ने डॉक्टर साहब को कहा था कि वह एक हिन्दू दल संगठित करें और आर० एस० एस० उनकी सहायता करेगा।

डॉक्टर साहब मान गये।

आर०एस०एस० के दिल्ली के कुछ स्वयं कार्यकर्ताओं की मांग थी कि एक हिन्दू दल बनाया जाये और उसमें संघ के स्वयंसेवकों को सम्मिलित होने की स्वीकृति दी जाये। परन्तु संघ के केन्द्रीय कार्यालय से इसकी स्वीकृति नहीं मिल रही थी।

जब संघ के नेताओं ने किसी भी हिन्दू दल के समर्थन का आश्वासन नहीं दिया तो डॉक्टर मुखर्जी ने कलकत्ता में एक राजनीतिक दल बना लिया और स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा बंगाल के कुछ प्रमुख लोगों को उसमें सम्मिलित कर लिया।

इस सूचना पर स्वयंसेवकों में बेचैनी उत्पन्न हो गयी और मुंगेर (बिहार) में संघ के एक कार्यकर्ता श्री टेकचन्द शर्मा ने बंगाल से बाहर डॉक्टर मुखर्जी की पार्टी की एक शाखा खोल दी। डॉक्टर मुखर्जी को वहां बुलाया और वहां जनसंघ (People's Party) के नाम से दल की स्थापना कर दी।

यह एक विचित्र तथ्य है कि इस कार्यकर्ता को, जिसने एक हिन्दू मंच स्थापित करना चाहा था, संघ से बाहर निकाल दिया गया। परन्तु उसकी नकल पर अन्य स्थानों पर भी संघ के स्वयंसेवक, संघ की आज्ञा की अवहेलना कर, जनसंघ स्थापित करने का विचार करने लगे थे। इसी सन्दर्भ में कुछ स्वयंसेवकों ने पंजाब में भी जनसंघ के नाम से एक दल बना लिया और उसके प्रधान श्री बलराज भल्ला बने। इसी प्रकार का एक दल दिल्ली में भी बनाये जाने की तैयारी थी।

इस पर संघ के नागपुर स्थित कार्यालय को जब समझ आया कि संघ के स्वयं-सेवक बगावत कर जनसंघ में सम्मिलित हो जायेंगे तो उसने विवश हो जनसंघ को अपना आशीर्वाद दे दिया। इस प्रकार संघ का सहयोग जनसंघ को मिलने लगा।

देखा जाये कि स्वराज्य काल में हिन्दुत्व को सबल और सजीव बनाने का यह पहला प्रयास था।

गांधीजी की हत्या के उपरान्त कांग्रेसियों ने सामान्य रूप में और पण्डित जवाहरलाल जी ने विशेष रूप से आर० एस० एस० की घोर निन्दा करनी आरम्भ कर दी थी और संघ को गांधी जी का हत्यारा घोषित करना आरम्भ कर दिया था।

इसका परिणाम यह हुआ था कि कांग्रेस में जो कुछ हिन्दू विचार के लोग थे, वे भी आर० एस० एस० के विरोधी हो गये थे। संघ ने इस विरोध का निराकरण उचित ढंग से नहीं किया। इसकी पूर्ण हलचल स्वयंसेवकों तक ही सीमित थी।

संगठन ठीक होता है, परन्तु संगठन भी तो सामान्य जनता के आश्रय ही चलता है। संगठन केवल स्वयंसेवकों तक सीमित हो तो संगठन नहीं, तानाशाही होती है। स्वराज्य मिल जाने पर और कांग्रेस के हाथ में राज्य आ जाने पर कांग्रेस पार्टी का जनता से वह सम्पर्क नहीं रहा था जो स्वराज्य पूर्व था, इस पर भी कांग्रेसी सरकार ने जनता से सम्पर्क स्थापित किया हुआ था और उसमें सफल हो रही थी।

हमारे कहने का अभिप्राये यह है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने राजनीतिक दल जनसंघ में संघ को स्वयंसेवकों के सम्मिलित होने की स्वीकृति दी, परन्तु उन स्वयंसेवकों को स्वेच्छा से राजनीति के संचालन का अधिकार नहीं दिया। संघ के अधिकारियों का जनसंघ पर दबाव जनसंघ के प्रथम अधिवेशन से ही आरम्भ हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानपुर में जनसंघ के प्रथम अधिवेशन के समय एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति श्री दीनदयाल को जनसंघ का मंत्री बनने के लिए भेज दिया गया। उस समय श्री दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के कार्यकर्ताओं में सर्वथा अपरिचित तो थे ही, जनता में भी उनका नाम किसी ने सुना नहीं था।

विचार किया जा रहा था कि वसन्तराव ओक कार्यालय मंत्री होंगे, परन्तु न केवल उनको जनसंघ में कार्य करने से रोका गया, वरन् उनका दिल्ली से अन्यत्र स्थानान्तरण का प्रबन्ध कर दिया गया। इस प्रकार जनसंघ का कार्य करने पर बाधा खड़ी की गयी।

होना क्या चाहिए था? यह विचारणीय है। हमारे विचार में कांग्रेस तो किसी भी हिन्दू नाम के राजनीतिक दल को सहन नहीं करती थी। परन्तु यह कोई कारण नहीं कि देश के रहने वाले बहुसंख्यक लोग समय-कुसमय अहिन्दू विचार के लोगों से पद-दलित किये जायें।

यही पण्डित जवाहरलाल अजमेर शरीफ की दरगाह में जाकर दस्तर लेते रहते थे और बाबू राजेन्द्र प्रसाद का सोमनाथ के मन्दिर का शिलान्यास करने जाना पसन्द नहीं करते थे। अतः कांग्रेस क्या चाहती है और क्या नहीं चाहती, यह प्रश्न नहीं। प्रश्न यह है कि हिन्दू सांस्कृतिक विचार वालों का राज्य इस देश में हो अथवा न हो? हम यही स्पष्ट करने का यत्न कर रहे हैं कि इसकी नितान्त आवश्यकता है। एक प्राचीन, अति श्रेष्ठ, मानव की उन्नति का साधन जो इस देश के विद्वान् मनीषियों ने अपने त्याग और तपस्या से अभी तक जीवित रखा हुआ है, उसको जीवित रखने के लिए हिन्दुत्व की राजनीति प्रचलित होनी चाहिए। वह इस समय देश में नहीं है।

इसको सुरक्षित रखने के लिए डॉक्टर हैडगवार ने एक संगठन तैयार किया था। हमारा दृढ़ एवं युक्तियुक्त मत है कि केवल बौद्धिक कार्य से यह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता। मुसलमानों के काल में यह बौद्धिक प्रयास चलता रहा, परन्तु राष्ट्र को घुन लगता रहा।

इस बौद्धिक प्रयास को भी, मैकाले की शिक्षा ने घुन लगाना आरम्भ किया हुआ है। इस प्रयास को रोकने के लिए मैकाले की राजनीति को बदलने की आवश्यकता है।

इसके लिए बहुत प्रयास किये गये। उनका संक्षिप्त वर्णन हमने दिया है। हम समझते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी एक प्रयास था। यह अभी भी चल रहा है।

परन्तु हमारा मत है कि केवल बौद्धिक प्रयास और वह बौद्धिक भी ऐसा जो केवल मन तथा शरीर से सम्बन्ध रखता हो, व्यर्थ जायेगा। उस बौद्धिक प्रयास के साथ, जिसकी संक्षिप्त रूपरेखा हमने प्राक्कथन में दी है, राजनीतिक आन्दोलन पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार पाना ही सफलता का साधन है।

इसी कारण हम कहते हैं कि इस कार्य में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रयास सफल होता प्रतीत नहीं होता। यह प्रयास अभी निःशेष नहीं हुआ। इसमें अभी बल प्रतीत तो है, परन्तु इसका राजनीतिक पक्ष अति दुर्बल है।

इस दुर्बलता का कारण यह है कि इसका बौद्धिक भी और राजनीतिक पक्ष भी अशुद्ध है।

बौद्धिक प्रयास का अभिप्राय केवल तुलसी और राम की महिमा का बखान नहीं है। बौद्धिक प्रयास का अभिप्राय है हिन्दुत्व के वास्तविक गौरव की स्पष्ट रूपरेखा को सम्मुख रखकर हिन्दुत्व को एक राष्ट्र का रूप देना।

इसमें मुख्य बात है गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर राजनीति प्रचलित करना। जाति की प्राचीन उपलब्धियों पर आघात से रक्षा के लिए राज्य सत्ता का संचालन।

संघ के वर्तमान प्रयास से यह होता सम्भव प्रतीत नहीं होता।

समय की मांग है कि उन व्यापक सिद्धान्तों पर, जिनका उल्लेख हमने प्राक्कथन में किया है, देश को ला खड़ा किया जाय। मज़हबी आधार पर देश खड़ा नहीं रह सकेगा। बुद्धि से विचारित मार्ग, जिसका वेदों में समर्थन किया गया है, पर देश और जाति को लाने के प्रयास की आवश्यकता है।

वेद में कहा है—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपातेस।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।।

(यजु० ३२-१४)

इस समय अबुद्ध विचारधारा का शासन चल रहा है। इसका विरोध होना चाहिए। पूर्ण हिन्दू समाज को सांस्कृतिक आधार देना असम्भव है। इस बौद्धिक धारा से मत-मतान्तरों का विरोध नहीं। हां, उन मत-मतान्तरों को न तो परस्पर लड़ने की स्वीकृति है, न ही मज़हब को बुद्धि का विरोध करने की स्वीकृति हो।

यह हिन्दू समाज का सांझा आधार (common denominator) बनाने का प्रयास है। इसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ योगदान दे सकता है।

हमारे विचार में बीज रूप में यह बात संघ में है, परन्तु संघ जो एक बात भूल रहा है वह है अभारतीय आसुरी शिक्षा का व्यापक प्रचार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम अध्याय

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ—२

इस संघ के अतिरिक्त हिन्दुत्व की रक्षा का प्रयास एक सीमा तक कुछ कांग्रेसी नेता भी करने का यत्न करते रहे हैं।

नमक सत्याग्रह के उपरान्त, कांग्रेस के कुछ नेताओं को श्री जवाहरलाल और गांधी जी की नीति में छिद्र दिखाई देनें लगा था। सन् १९३६ में जब जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन के प्रधान बनाये जा रहे थे तो अधिकांश कांग्रेसी नेता उनके पक्ष में नहीं थे।

फ्रैंक मोरेस जवाहरलाल की जीवनी में लिखते हैं—

Not all of his collegues were enamoured of this outlook, which many felt was too categorical and didectic. Lucknow brought neither solace nor vindication to Nehru. The Congress as a whole was not prepared to take an uncompromising attitude. It preferred to wait on events, and neither politically, economically nor socially did it assume the firm, defined, rigid unyielding front which Jawaharlal would have liked it to achieve.

Frank Moraes, *'Jawaharlal Nehru—A Biography'*,
Page 254

अर्थ है—उसके (जवाहरलाल नेहरू के) सब साथी उसके विचारों के सम्मोहन में नहीं थे। बहुत थे जो यह समझते थे, वह सीमा से अधिक सादगी का वक्तव्य है और सैद्धान्तिक है। लखनऊ अधिवेशन से जवाहरलाल को शान्ति नहीं मिली। कांग्रेस लगभग पूर्ण उसके विपरीत थी। वह अयुक्तिसंगत पक्ष लेना नहीं चाहती थी और रूठा हुआ व्यवहार अपनाना नहीं चाहती थी। कांग्रेस चाहती थी कि देखें कि उन सुधारों का क्या फल होता है। कांग्रेस नेता आर्थिक विचार से और न ही राजनीतिक विचार से वह पक्ष लेना चाहते थे जो जवाहरलाल चाहते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु गांधी जी का जादू चल रहा था। वह जवाहरलाल के पक्ष में थे।

इसी विषय में लेखक लिखता है—

It was whispered that the gulf between the Mahatma and Nehru was widening, and Gandhi was alleged to have said, "My life work is being ruined by Jawaharlal's utterances."

Gandhi was quick to deny this allegation in an article in Harijan of July 25th entitled "Are we rivals ?" He wrote :

So far as I am aware, Jawaharlal has come to the conclusion that India's freedom cannot be gained by voilent means and that it can be gained by non-violent means. And I know for a fact that he did not in Lucknow "come out for the use of voilence in the struggle for independence."

Frank Moraes, '*Jawaharlal Nehru—A Biography*', Page 259

अर्थ है—यह कानों-कान कहा जाने लगा था कि महात्मा और नेहरू में मत-भेद बढ़ रहा है। यह कहा गया था कि महात्मा जी ने कहीं कहा है कि जवाहरलाल के कथनों ने मेरे जीवन-कार्य को बरबाद कर दिया है।

गांधी जी ने तुरन्त इसका प्रतिवाद २३ जुलाई, सन् १९३६ के 'हरिजन' में अपने लेख 'क्या हम प्रतिस्पर्धी हैं ?' में छपवा दिया।

गांधी जी ने लिखा था—

'जहां तक मुझे ज्ञात है जवाहरलाल इस परिणाम पर पहुंचा है कि भारत को स्वतन्त्रता हिंसात्मक उपायों से नहीं मिल सकती। यह अहिंसात्मक उपायों से ही मिल सकेगी। मुझे विदित है कि उसने लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन पर हिंसात्मक उपायों के लिए नहीं कहा...।'

यह जनता को धोखा देना था। जवाहरलाल उनकी हिमायत कर रहा था जो हिंसात्मक उपाय प्रयोग करने के पक्ष में थे। साथ ही, देश में कम्युनिज्म को प्रोत्साहन दे रहा था।

विवाद हिंसा-अहिंसा का नहीं था, वरन् भारतीयता और अभारतीयता का था। जवाहरलाल के विपक्ष में श्री वल्लभभाई पटेल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद और प्रायः सब कांग्रेसी नेता थे।

परन्तु वे दुर्बलात्मा नेता गांधी जी के राम-नाम के 'जाल' को तोड़ नहीं सके और स्वयं भी उसका शिकार हो गये।

यह मतभेद चलता रहा। गांधीजी की हत्या तक स्वराज्य के मंत्रिमण्डल में भी जवाहरलाल अल्पमत में था। वल्लभभाई पटेल बहुमत में थे। जवाहरलाल के केवल एक पक्षपाती थे। वह थे मौलाना अबुल कलाम आजाद। प्रायः जवाहरलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधियों को नियंत्रण में रखने के लिए गांधी जी की सहायता लिया करते थे।

गांधीजी की हत्या ने हिन्दू पक्ष को दुर्बल किया और जवाहरलाल की राजनीति पर पकड़ को प्रबल बना दिया।

वल्लभभाई पटेल निःस्तेज हो गये और कुछ काल उपरान्त ही उनका भी देहान्त हो गया।

गांधी जी की हत्या ने न केवल वल्लभभाई पटेल को दुर्बल बनाया वरन् हिन्दू पक्ष को भी हानि पहुंचाई। हिन्दू मत सदियों से दुर्बल रहा है और गांधी जी की हत्या पर उनके सभी पक्षपातपूर्ण व्यवहार को भूल शान्त हो गया। अतः धीरे-धीरे हिन्दू पक्ष भी निस्तेज होता चला गया।

गांधी जी की हत्या का प्रभाव राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर भी हुआ है और वह प्रभाव अब भी चल रहा है। इसका प्रतिरोध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ करने में सफल नहीं हो रहा। इसमें कारण है संघ के नेताओं का अबुद्ध व्यवहार। गांधी जी की हत्या के पूर्व ही श्री जवाहरलाल महात्मा गांधी की सहायता से कांग्रेस में हिन्दू-पक्ष के नेताओं का विरोध करते रहे थे।

इसका एक उदाहरण श्री जवाहरलाल जी के आश्रय पर फलने-फूलने वाले श्री शेख अब्दुल्ला हैं।

श्री मेहरचन्द महाजन जो उस समय कश्मीर में प्रधानमंत्री बनाये गये थे, लिखते हैं —

The Sheikh had organized a Kashmiri Volunteers Corps and requested Pandit Nehru to supply 303 rifles to them. Rifles were sent to the commander of the Indian Forces located in the state. I had warned the commander that these arms should not be handed over to the volunteers without his being satisfied that they would be able to use them and take care of them. Thus some delay took place in the supply of arms to the Sheikh's volunteers.

The Sheikh took this opportunity to Pandit Nehru and told him that the arms that had been sent for the use of the National Conference volunteers had been given by me to its rivals, the Rashtrya Swayamsevak Sangh. He further added that they were using these arms for killing Muslims in Jammu. The complaint was not only false but malicious. Without any enquiry Pandit Nehru took the words of Sheikh Abdulla as gospel truth and wrote a very nasty letter to the Maharaja

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

against me.

His Highness gave the letter to me for reply. I wrote to Pandit Nehru that I had not received a single rifle from him, the rifles sent were in the possession of Officer Commanding the Indian Forces in the State who had not given a single rifle to the R. S. S. I challenged the Sheikh to prove his allegations. Pandit Nehru promptly withdrew the allegations. He expressed regret and said he was sorry to learn that he had been misinformed.

Mehar Chand Mahajan, '*Looking Back*',
Page 157-58

अर्थ है —शेख ने कश्मीर वालण्टियर सैनिक संगठित किया था और पण्डित नेहरू से प्रार्थना की थी कि उनको ३०३ बोर की बंदूकें उस दस्ते के लिए भेजी जायें। बंदूकें भारतीय सेना के कमाण्डर के पास भेजी गयी थीं। मैंने कमाण्डर को सचेत कर दिया था कि ये बन्दूकें वालण्टरियों को तब तक न दी जायें जब तक वह सन्तुष्ट नहीं हो जाता कि वे इसका प्रयोग जानते भी हैं अथवा नहीं। तब तक वह बन्दूकों को अपने पास रखें। इस प्रकार शेख के आदमियों को बंदूकें मिलने में देरी हो रही थी।

शेख ने इसे अवसर समझा और पण्डित नेहरू को लिखा कि बंदूकें जो उसके वालटिण्यरों के लिए भेजी गयी हैं, उसके विरोधी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वालों को दे दी गई हैं। शेख ने यह भी लिखा कि वे बंदूकें जम्मू में मुसलमानों की हत्या करने के लिए प्रयोग की गयी हैं। यह आरोप न केवल झूठा था, प्रत्युत विद्वेषपूर्ण भी था। पण्डित नेहरू ने शेख के इस कथन को धर्मग्रन्थ की भांति सत्य समझ महाराजा को घोर अपमानजनक पत्र (मेरे विषय में) लिखा।

'हिज हाईनैस' ने वह पत्र मेरे पास उत्तर देने के लिए भेज दिया। मैंने पण्डित जी को लिखा कि आपने मेरे पास एक भी बंदूक नहीं भेजी। बंदूकें सैनिक कमाण्डर को भेजी हैं। राज्य ने आर० एस० एस० को कोई बंदूक नहीं दी। मैं शेख अब्दुल्ला को चुनौती देता हूं कि वह अपने आरोप को सिद्ध करे। इस पर पण्डित नेहरू जी ने आरोप वापस ले लिया और कहा कि उन्हें शोक है कि उनको ग़लत सूचना दी गयी थी।

श्री मेहरचन्द महाजन आगे लिखते हैं कि —

The Sheikh also made an attempt to poison the mind of Mahatma Gandhi against me. He wrote to the Mahatma that Muslims were being killed in Jammu at the instigation of His

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Highness and myself. Mahatmaji, without even asking me charged us with these killings, in one of his post-prayer speeches.

Mehar Chand Mahajan, *'Looking Back'*, **Page 158**

अर्थ है—शेख ने महात्मा गांधी के मन में मेरे विपरीत विष भरने का यत्न किया था। उसने लिखा था कि जम्मू में मेरे और महाराज के भड़काने पर मुसलमानों की हत्याएं की जा रही हैं। महात्मा गांधी ने मुझसे पूछे विना प्रार्थना के उपरान्त हम पर यह आरोप लगाया था।

कश्मीर के प्रधानमंत्री मेहरचन्द महाजन ने महात्मा जी को लिखा था कि यह सरासर झूठ है। कृपया बतायें कि किसने उनको यह सूचना भेजी है।

इस पर महात्मा जी ने अपनी झेंप मिटाने के लिए इसके उत्तर में लिख दिया कि उनका आशय किसी पर आरोप लगाना नहीं था। उनका केवल यह कहना था कि हम मुसलमानों की रक्षा नहीं कर रहे जिसके करने की हम पर जिम्मेदारी है।

इन तथ्यों के आधार पर हमारा यह मत है कि आर० एस० एस० व्यर्थ में दोषी ठहराया जा रहा था।

एक अन्य उदाहरण यहां दे दें तो पण्डित जवाहरलाल की मनोवृत्ति का ज्ञान भलीभांति हो जायेगा।

सेना में श्री जवाहरलाल के एक प्रिय अफ़सर श्री बी० एम० कौल लैफ्टिनेण्ट-जनरल थे। इस सज्जन को अपनी बारी से पहले ही उन्नति देकर इस उपाधि पर पहुंचाया गया था और इस पर संसद में चर्चा भी हुई थी। इस नियुक्ति पर तत्कालीन सुरक्षा मंत्री श्रीकृष्ण मैनन की घोर निन्दा हुई थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल ने संसद की बहस में हस्तक्षेप करते हुए श्री कौल की सिफारिश की थी।

यही श्री कौल अपनी पुस्तक 'दी अनटोल्ड स्टोरी' में एक घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

I also understood that one Shambhoo Nath had been arrested by Abdullah on a fake allegation and was now under arrest in Srinagar. In those days if Abdulla could label no other plausible charge against men he did not approve, he used to label them as R.S.S. (Rashtriya Sevak Sangh) workers. He could then punish them on 'Secular' grounds. We eventually managed to get Shambhoo Nath before us for giving evidence and heard his harrowing talk. He had been president of the National Conference at Verinag and just because he

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

acted as a guide to some Indian troops, in the recent affary, he had lost his 'importance' all of a sudden, was labelled as a R. S. S. worker and jailed. He alleged he was made to march barefooted and shackled. Shambhoo Nath showed me deep marks of the beatings (by the authorities) he had received on various parts of his body so that he should be compelled to confess imaginery crimes he had never committed. History seemed to have receded back to mediaeval times. I reported this case to Sardar Patel informally, when Shambhoo Nath was eventually released.

B. M. Kaul, *'The Untold Story'*,
Page 113-14

दो डोगरा लड़कियों के अपहरण और उनसे अनेकों के व्यभिचार करने के समाचार पर लैफ्टिनैण्ट कर्नल रणवीर सिंह उनको छुड़ाने के लिए गया तो बकरवालों से मुठभेड़ हो गयी। बकरवाल भी शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थे। इस मुठभेड़ में कई बकरवाल मारे गये। इस पर श्री अब्दुल्ला ने पण्डित नेहरू को सख्त चिट्ठी लिखी और कश्मीर तथा भारत के सम्बन्धों पर असर पड़ने की धमकी दी तो भारत सरकार ने बकरवालों से मुठभेड़ की घटना पर जांच आरम्भ कर दी। उस जांच के सम्बन्ध में लिखते हुए पुस्तक के लेखक लिखते हैं—

उपर्युक्त लेख का अर्थ है—'मुझे समझ आया कि एक शम्भूनाथ की गवाही की आवश्यकता है। परन्तु वह अब्दुल्ला की सरकार द्वारा बन्दी बनाया हुआ था और श्रीनगर में था। उस पर झूठा आरोप था। उन दिनों, अब्दुल्ला जिसको पकड़ना चाहता था, उसके विरुद्ध कुछ भी आरोप न होने पर भी आर० एस० एस० का कार्यकर्ता होने का आरोप लगाकर और उसको 'सैक्युलर' विरोधी कहकर बन्दी बना लेता था। हमने अन्त में शम्भूनाथ को बुलवाया। लड़कियों के विषय में उसके बयान लिये। शम्भूनाथ ने अपनी भयानक कथा सुनाई। वह वैरीनाग में नेशनल कान्फरेंस (शेख अब्दुल्ला की पार्टी) का प्रधान था। वह उन हिन्दुस्तानी सैनिकों का गाइड बना था जो लड़की की खोज में भेजे गये थे। इस कारण वह अपनी पदवी की महत्ता से पतित समझा गया था और उसके विरुद्ध आर० एस० एस० का सदस्य होने का आरोप लगाकर उसे बन्दी बनाया गया था। उसने राज्य कर्मचारियों पर यह आरोप लगाया था कि उसे बेड़ियां डालकर न केवल पैदल लम्बे फासले तक चलाया गया है। उसने अपने शरीर के कई भागों पर मार के निशान दिखाये थे। उसे ऐसी बात मान लेने पर विवश किया जा रहा था जिनके विषय में वह कुछ नहीं जानता था…।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में वह सरदार पटेल की आज्ञा से छोड़ा गया।

हमारा कहना है कि आर० एस० एस० के विपरीत तत्कालीन भारत सरकार हाथ धोकर लगी हुई थी।

यह संस्था अभी तक कार्य कर रही है। इसके स्वयंसेवक अपने स्थान पर सुदृढ़ खड़े हैं, परन्तु ये राजनीतिक दृष्टि से दण्डित हो रहे हैं। जबसे पण्डित नेहरू प्रधानमन्त्री पद पर पहुँचे थे, अन्तकाल तक यह आर० एस० एस० को भूल नहीं सके। संसद में और संसद के बाहर इस संस्था के विरुद्ध आरोप लगाया करते थे।

इस संस्था के अधिकारी राजनीति से अपने को पृथक् प्रकट करने के लिए सिर तोड़ यत्न करते रहते हैं। यह इस कारण कि ये राजनीति में भाग लेना नहीं चाहते। इस पर भी जब सन् १९५१ में कानपुर में जनसंघ के महामन्त्री पद पर श्री वसन्त राव ओक नियुक्त होने लगे थे तो उसके स्थान पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक कार्यकर्ता पण्डित दीनदयाल उपाध्याय को आगे कर दिया गया और उन्हें मन्त्री बना दिया गया। श्री दीनदयाल उस समय किसी प्रकार भी न दिल्ली में, न भारत के किसी अन्य भाग में ख्याति रखते थे।

इस बात का सन्देह किया जाता है कि जब भी जनसंघ को कांग्रेस के विरुद्ध एक बलशाली राजनीतिक दल बनाने का यत्न किया जाता है, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अधिकारी जनसंघ की टांग घसीट लेते हैं। परिणाम यह हो जाता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से बाहर के जो कुछ भी लोग हिन्दू विचारधारा के पोषण के लिए इसमें आते हैं, उनको उभरने नहीं दिया जाता। अतः यह दल हिन्दू हितों की रक्षा करने वाला न रहकर केवल आर० एस० एस० की एक उप-समिति मात्र ही बना रहा है।

यह एक तथ्य है कि सन् १९२५ से लेकर सन् १९५२ तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों और विशेष रूप में प्रचारकों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने और अपने ज्ञानवर्द्धन के लिए भी निरुत्साहित किया जाता था।

ये लोग जो देश और देश से बाहर की बातों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं, वे भला जाति का उद्धार कैसे कर सकेंगे? जनसंघ एक राजनीतिक दल होने के कारण भली-भांति विश्व की राजनीति से परिचित होना चाहिए था। वह संघ के नियंत्रण से सम्भव नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टम अध्याय

भारतीय जनसंघ

जब भारतीय जनसंघ कार्य करने लगा और उसके महामन्त्री के पद पर श्री दीनदयाल उपाध्याय नियुक्त किये गये तो वह लगभग सामान्य स्वयंसेवकों के समान ही देश और देश के बाहर की स्थिति से अनभिज्ञ थे।

जब-जब भी कोई ऐसा विषय उपस्थित होता जिसमें हिन्दू हितों को भय होता तो जनसंघ के मन्त्री महोदय, जाने अथवा अनजाने, जनसंघ को सदा हिन्दू विरोध नीति के समर्थन पर ले जाते। कार्यकारिणी के पिचानवें प्रतिशत सदस्य स्वयंसेवक स्तर के थे और वे अपनी शिक्षा-दीक्षा के अनुसार वैसा ही विचार करने लगते थे जैसे महामन्त्री महोदय चाहते थे।

उदाहरण के रूप में पंजाब में हिन्दी बनाम गुरुमुखी, जिसे पंजाबी के नाम से विख्यात किया जा रहा था, के झगड़े का प्रश्न था।

पंजाब की हिन्दू संस्थाएं चाहती थीं कि पंजाब में भाषा हिन्दी घोषित हो। सिक्ख, विशेष रूप में अकाली पंजाबी के लिए कह रहे थे। उस विषय में कुछ कांग्रेसी भी हिन्दी के पक्ष में सम्मिलित थे और हिन्दू इस विषय पर सत्याग्रह करने के लिए तैयार हो रहे थे। हिन्दू पक्ष में आर्यसमाज, जनसंघ, सनातन धर्म सभा तथा हिन्दू मनोवृत्ति के कुछ कांग्रेसी भी थे। विरोध में शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी और कम्युनिस्ट थे। एकाएक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर-संघचालक पंजाब में गये और स्वयंसेवकों के एक एकत्र में यह घोषणा कर आये कि पंजाब के हिन्दुओं की भाषा पंजाबी है। बस, हिन्दू मोर्चा टूट गया। जनसंघ उस मोर्चे से पृथक् हो गया। कांग्रेसी भी जनसंघ को पृथक् होते देख मोर्चा छोड़ गये। आर्यसमाज ने इस आन्दोलन के लिए कई लाख रुपया पंजाब के बाहर से एकत्रित किया था। वह उसने किसी अन्य कार्य पर व्यय कर दिया।

इस प्रश्न पर विवाद पीछे जनसंघ की कार्यकारिणी सभा में भी हुआ था। उसमें हिन्दी के पक्ष वालों ने स्पष्ट किया था कि पंजाबी का शब्द अनभिज्ञ लोगों का धोखा देने के लिए प्रयोग में लाया जा रहा है। वास्तव में विवाद हिन्दी और पंजाबी का नहीं, वरन् देवनागरी लिपि और गुरुमुखी लिपि का है। पंजाबी एक बोली है। यह देवनागरी लिपि में भी लिखी जाती है और गुरुमुखी लिपि में भी। इस कारण विवाद इन दोनों लिपियों में है, पंजाबी का है ही नहीं।

परन्तु श्री दीनदयाल उपाध्याय इस समस्या को स्वयं पंजाब प्रदेश के न होने के कारण समझे ही नहीं और जनसंघ ने घोषणा कर दी कि पंजाब की भाषा पंजाबी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विवाद पंजाब को भारत से पृथक् करने के प्रयासों का श्रीगणेश था और जनसंघ इसमें सहायक हो गया।

मुसलमानों की भांति अकाली नेता भी अपने को एक पृथक् कौम समझने लगे हैं।

अंग्रेजी राज्य के काल में नाभा के एक अंग्रेजी रेजिडैण्ट मैकालिफ के कहने पर सिक्ख यह समझने लगे थे कि सिक्ख और हिन्दू भिन्न-भिन्न कौमें हैं। यह बात उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त के दिनों की थी। उन दिनों ब्रिटिश सरकार मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध करने का यत्न कर रही थी।

पंजाव में हिन्दुओं की संख्या अधिक थी। सिक्खों की संख्या कम थी। इस कारण पंजाब का विभाजन करने के लिए कहा जा रहा था जिससे एक सूवा ऐसा बन जाये जिसमें सिक्ख बहुसंख्या में हो जायें और इस प्रकार सिक्ख ग्रन्थियों का राज्य स्थापित हो जाये। इस विषय में भी जनसंघ मौन था। एक समय सिक्ख समुदाय के एक सन्त ने इस विषय पर भूख हड़ताल कर दी और घोषणा कर दी कि अमुक तारीख से वह अपने पर मिट्टी का तेल डालकर जल मरेगा। इसका विरोध करने के लिए जनसंघ के एक नेता ने भी घोषणा कर दी कि यदि विभाजन का आश्वासन सरकार ने दिया तो वह भी जल मरेंगे।

इस पर अखिल भारतीय स्तर के एक जनसंघ नेता श्री बलराज मधोक उस जनसंघी को जिसने पंजाबी सूवा के विरुद्ध सत्याग्रह की घोषणा की थी, अपने हठ से हटाने के लिए जालन्धर जा पहुंचे।

श्री बलराज मधोक किसके कहने पर गये? यह स्पष्ट था कि वह राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के आदेश का पालन कर रहे थे।

जनसंघी नेता ने सत्याग्रह तोड़ा तो भारत सरकार ने सिक्खों को आश्वासन दे दिया कि केन्द्रीय सरकार समय पर उनकी मांग को स्वीकार कर लेगी।

पहले राज्य की भाषा और लिपि वह बनी जो सिक्ख चाहते थे; फिर पृथक् राज्य बना जिसमें सिक्ख बहुमत में हो गया और अब सिक्ख पृथक् देश के लिए आन्दोलन कर रहे हैं।

यही प्रक्रिया पाकिस्तान बनाने के लिए प्रयोग की गयी थी। सन् १८८४ में सर सैयद अहमद ने कहा कि मुसलमान एक पृथक् कौम (राष्ट्र) हैं। सिक्खों की अवस्था में यह घोषणा नाभा के रेजिडैण्ट मैकालिफ महोदय ने की।

पाकिस्तान के विषय में मुसलमानों को विशेष अधिकार सन् १९०६ में मिल गये। और उसी प्रकार सन्त जी को आश्वासन मिल गया कि एक सिक्ख बहुमत राज्य बना दिया जायेगा।

आगे जो कुछ मुस्लिम लीग ने सन् १९४१ में मांगा था, वह सन् १९८१ में कुछ अकाली मांग रहे हैं, वह सन् १९८१ से कुछ सिक्खों ने मांगना आरम्भ कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकिस्तान के विषय में जो भूमिका कांग्रेस ने निभाई थी, वही स्वयंसेवक संघ निभा रहा था। संघ की प्रेरणा से जनसंघ ने, यद्यपि कुछ भेद से, कार्य आरम्भ कर दिया है। हमारा कहने का अभिप्राय है कि हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित स्वयं ही अपने पांव पर कुल्हाड़ा चलाते हैं।

जनसंघ के इस अस्वाभाविक व्यवहार में छुपा हाथ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का ही है। जनसंघ के दिशाविहीन होने में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कितना हाथ है, इसकी एक और घटना दे दी जाये तो बात स्पष्ट हो जायेगी।

सन् १९५४ में दिल्ली म्यूनिस्पिल कमेटी के चुनाव होने जा रहे थे। वसन्तराव ओक का दिल्ली की सामान्य जनता में मेल-जोल था और उनकी प्रेरणा से दिल्ली प्रदेश जनसंघ के निर्वाचन बोर्ड ने जनता के कुछ हिन्दू विचार के लोगों को उम्मीदवार खड़ा करने का यत्न किया। जब कुछ नामों की घोषणा होने वाली थी तो महामन्त्री दीनदयाल जी ने दिल्ली जनसंघ को अपनी विशेष आज्ञा से भंग कर दिया।

जनसंघ दिल्ली के मन्त्री श्री कंवरलाल गुप्ता को यह आज्ञा पहुंची कि दिल्ली जनसंघ भंग किया जाता है तो वह अखिल भारतीय जनसंघ के प्रधान श्री मौलीचन्द्र के पास पहुंचे और पूछा कि यह आज्ञा दिल्ली जनसंघ के किस अपराध के लिए दी गयी है। श्री मौलीचन्द्र ने कहा कि उनको इस आज्ञा का ज्ञान नहीं है।

मौलीचन्द्र शर्मा ने दीनदयाल को, जो उस समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यालय में ठहरे हुए थे, टेलीफोन कर इस विषय में पूछा तो महामंत्री श्री दीनदयाल ने प्रधान को कह दिया कि उन्होंने स्वयं यही उचित समझा है। महामंत्री ने प्रधान से बिना सम्मति किये यह आदेश जारी किया था।

उनका मत था कि राजनीतिक पार्टियों में प्रधान गौण होते हैं और मन्त्री ही सर्वेसर्वा होते हैं।

वस्तुत: यह परिपाटी कम्युनिस्ट प्रणाली की विशेषता है।

यह ठीक है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हिन्दुओं की संस्था है और हिन्दुओं के हितों की रक्षा के लिए हिन्दुओं को संगठित करना चाहती है, परन्तु यह भी सत्य है, जो कि घटनाओं से सिद्ध किया जा सकता है, कि अनजाने अथवा जानबूझ कर यह हिन्दुओं का अहित ही करती रही है। यह हिन्दुत्व को न समझने के कारण है। गांधी जी राम-नाम का जाप करते हुए नास्तिकों को हिन्दुओं पर थोप गये और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हिन्दू-हिन्दू चिल्लाकर हिन्दुत्व से अनभिज्ञ लोगों के हाथ में हिन्दू हितों को सौंप रहा है।

अत: हमारा यह मत है कि हिन्दू की रक्षा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी उसी प्रकार असफल ही रहा है जैसे आर्यसमाज, हिन्दू महासभा इत्यादि असफल रहे हैं। हिन्दुत्व की यात्रा अभी तक अवरुद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम अध्याय

हिन्दुत्व—आपात्काल स्थिति में

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने २५ जून, सन् १९७५ को भारत में आपात् स्थिति की घोषणा की थी।

हम इस पुस्तक में इन्दिरा गांधी, प्रधानमंत्री, भारत सरकार अथवा जिस कारण से आपात् स्थिति घोषित की गयी, उस पर लिखना नहीं चाहते। यह इस पुस्तक का विषय भी नहीं है। इस विषय पर मतभेद भी है।

आपात् स्थिति के उपरान्त जनता पार्टी की सरकार ने इस आपात् स्थिति में हुई घटनाओं पर तो जांच कमीशन बैठा दी, परन्तु आपात् स्थिति क्यों लगानी पड़ी, इस विषय में जांच करने के लिए कोई कमीशन नहीं बैठाया।

उन 'बुद्धिमानों' को यह समझ नहीं आया कि यदि आपात् स्थिति ठीक थी तो उसमें जो कुछ हुआ था, वह भी ठीक क्यों नहीं ? तब जांच किस बात की की जा रही थी ? आपात् स्थिति में तो ऐसा होता ही है।

इस पर भी इस विषय पर हम कुछ नहीं लिख रहे हैं। हमारा विषय है कि इस काल में हिन्दुत्व की क्या दशा थी ? जहां तक सांस्कृतिक दिशा में गति का प्रश्न था, हमारा विचार है कि किसी प्रकार की प्रगति नहीं हुई। यह ठीक है कि इस आपात् स्थिति में धर्म संस्थाएं, आर्यसमाज, सनातन धर्म सभा, हिन्दू महासभा इत्यादि पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगा था, यद्यपि उनके सार्वजनिक उत्सव इत्यादि होने में कठिनाई थी, केवल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध था।

आपात् स्थिति से पूर्व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में एक परिवर्तन प्रत्यक्ष दिखाई देता रहा है। वह यह कि जहां संघ के आरम्भ काल से लेकर सन् १९५७ तक संघ का न तो कोई लिखित साहित्य था, न इतिहास, इसके उपरान्त संघ ने अपना साहित्य छपवाना और बांटना आरम्भ कर दिया था। इस कारण आपात् स्थिति में कितने स्वयंसेवक पकड़े गये और वे क्या-क्या करते थे, जिस कारण इस संस्था को वर्जित किया गया, लगभग सब स्पष्ट है। जो बात हम यहां लिखना चाहते हैं, वह यह है कि संघ के कुछ लोग बाबू जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन में भाग लेने लगे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि जयप्रकाश नारायण का आन्दोलन संघ के स्वयंसेवकों के आश्रय पर ही चल रहा था।

इस विषय में इतना तो कहा ही जा सकता दे कि श्री नाना देशमुख, जो संघ की ओर से जनसंघ पर देख-रेख करने के लिए नियुक्त थे, बाबू जयप्रकाश नारायण के साथ घी-शक्कर हो रहे थे।

इस कारण बाबू जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन पर दो शब्द कहने आवश्यक प्रतीत हो रहे हैं। बाबू जयप्रकाश नारायण वैसे ही 'गांधी-भक्त' थे, जैसे पण्डित जवाहरलाल थे। दोनों गांधी जी के न तो अहिंसावाद को मानते थे, न ही उनको खद्दर तथा घरेलू दस्तकारियों की बात पसन्द थी। जवाहरलाल जी ने स्वयं अपने स्वरचित जीवनचरित् में लिखा है कि वह बड़े-बड़े कारखानों और तीव्र गति से चलने वाले विमानों को पसन्द करते हैं, अहिंसावाद को वह सामयिक नीति ही मानते हैं।

यही बात श्री जयप्रकाश नारायण की थी। दोनों में यदि कुछ अन्तर था तो इतना था कि बाबू जयप्रकाश नारायण का गांधी जी से मतभेद प्रत्यक्ष था। जवाहरलाल नेहरू अपने मतभेद को छुपाये रखते थे। जयप्रकाश नारायण समाजवादी थे। हम समाजवाद का अभिप्राय समझते हैं कम्युनिज्म, परन्तु धीमी गति से।

जो कोई हिन्दुत्व के समीप है, उसे श्री जयप्रकाश के विषय में विचार करते हुए यह देखना होगा कि हिन्दुत्व और समाजवाद में समानता कहाँ है? समाजवादी राज्य तथा समाज के विषय में विशेष विचार रखते हैं। उसके अनुसार व्यक्ति के निजी तथा समष्टिगत् कार्यों में कुछ भेद समझते हैं।

व्यक्ति और समाज में यदि कहीं भेद दिखाई देता है तो इतना ही है, जितना घर के गाय-बैल से घरवालों का भेद है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि मानव जीवन समाजवादी समाज में एक पशु के जीवन से कुछ अधिक नहीं रह जाता।

यह ठीक है कि समाजवादी समाज के घटक खाते तो केक-पेस्टरियाँ ही हैं। वे काम भी जज और मंत्रियों का करने वाले हो सकते हैं। परन्तु जो कार्य उनको करने को समाज देता है, उसको ही करते हैं और वैसा ही करते हैं, जैसा समाज निश्चय करता है। अभिप्राय यह कि समाजवाद में व्यक्ति का व्यक्तित्व शून्य के समान होता है।

परन्तु यह हिन्दुत्व नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने विचार करने की सीमा और उस विचार को कार्यरूप में लाने की सीमा बहुत लम्बी, बड़ी होती है। व्यक्ति के कार्य की सीमा है—आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। अर्थात् जो कुछ हम अपने साथ किया जाना पसन्द नहीं करते, वह हम किसी दूसरे के साथ व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में नहीं ला सकते। बस, यही सीमा है। कुछ कार्य हैं जो मनुष्य बिना किसी का विरोध किये कर सकता है। उन सब में मनुष्य स्वतन्त्र है।

उदाहरण के रूप में एक मनुष्य यदि पसन्द नहीं करता तो विज्ञान की उपलब्धियों का त्याग कर सकता है और जंगल में झोंपड़ा बनाकर रह सकता है। इससे उलट भी बात हो सकती है। वह चाहे तो सुख-सुविधा के सभी साधन जो वह धर्मयुक्त उपायों से प्राप्त कर सके, का उपभोग कर सकता है। यह उसकी रुचि पर निर्भर करता है।

इस प्रकार अन्य काम हैं।

इस विषय में एक गांधीवादी से हुआ एक वार्तालाप मुझे स्मरण आ गया है। मैं आयुर्वेद सम्मेलन के कार्य से झांसी गया था। वहां से लौटने के समय दिल्ली का फर्स्ट क्लास का टिकट खरीदने लगा तो वह गांधीवादी मेरे साथ थे। वह कहने लगे, "वैद्य जी! आपको थर्ड क्लास में यात्रा करनी चाहिए।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

तो वह सज्जन बोले, "सबके समान अपने को प्रकट करने के लिए। जिससे आप अपने को सबके समान समझ सकें।"

मेरा तुरन्त उत्तर था, "परन्तु मैं सबके समान नहीं हूं। मेरा कार्य प्रायः सामान्य व्यक्तियों से भिन्न है।"

मैं समझता हूं हिन्दुत्व और समाजवाद में यही अन्तर है। यथायोग्य व्यवहार अथवा गुण, कर्म, स्वभावानुसार व्यवहार ही हिन्दुत्व है।

समाजवाद है कि रेल में केवल एक ही प्रकार के डिब्बे हों। अर्थात् गुड़-खल एकोभाव। मैं इसको मिथ्या भावना मानता हूं। यदि मेरे विचार का हिन्दुत्व लागू हो तो मैं अध्यापक वर्ग, डॉक्टरों तथा न्यायाधीशों के लिए यात्रा में सुविधा पसन्द करूंगा। इस पर यह व्यक्ति की रुचि अनुसार हो। कोई न्यायाधीश चपरासी के साथ बैठना चाहता है तो आपत्ति नहीं होगी।

यह अन्तर है एक समाजवादी और एक हिन्दुत्व के पुजारी में। संघ के कार्यकर्ता, जो जयप्रकाश नारायण जी से सहयोग कर रहे थे, वे बतायें कि वे क्या चाहते थे?

हम समझते हैं कि यथायोग्य व्यवहार में समाजवाद का विरोध होता है। इस कारण हमारा प्रश्न है कि श्री जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन का संघ के सिद्धान्तों से क्या सम्बन्ध था?

श्री बलराज मधोक ने अपनी पुस्तक "स्टौर्मी डिकेड" में लिखा है—

The first thing I noticed was the dearth of talent in the high echelons of the R. S. S. Most of them lived in a world of their own imagination. They had little touch with the realities of the situation. **Balraj Madhok, '*Stormy Decade*', Page 193**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अर्थ है—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में एक बात का मैंने अनुभव किया कि इनमें वृद्धि की कमी थी। संघ के कार्यकर्ता अपनी ही कल्पना के संसार में रहते थे। परिस्थिति की वास्तविकता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता था।

इस पर भी संघ के गुण तो हैं। यह है इनकी संगठनात्मक प्रवृत्ति, अपने कार्य में लग्न और अनुशासन। परन्तु यह सब होते हुए भी कुछ नहीं हैं। क्योंकि ये बातें कार्य विधि से सम्बन्ध रखती हैं। इनका कार्य की दिशा से सम्बन्ध नहीं है।

इस प्रकार का संगठनात्मक कार्य हिन्दुत्व की रक्षा के लिए अत्यावश्यक है, परन्तु यदि ऐसे संघ से हिन्दुत्व की रक्षा नहीं हो, वरन् हिन्दुत्व का विरोध हो तो फिर इसका क्या लाभ होगा ?

संघ यदि एक राजनीतिक दल के रूप में राजनीति के क्षेत्र में आता है तो इसमें किसी प्रकार की हानि नहीं है। संघ निर्वाचनों में भाग ले तो संघ के नाम पर। फिर संघ के निर्वाचित प्रतिनिधि कुछ ऐसा करते जैसा श्री अटलबिहारी वाजपेयी जनसंघ में करते रहे हैं तो उसका दोष संघ को सहन करना पड़ता।

श्री वाजपेयी नीम कम्युनिस्ट, नीम हिन्दू, परन्तु हृदय से जवाहरलाल नेहरू के प्रशंसक हैं। कई बार वह खुले आम ऐसा कह भी चुके हैं और कार्यकारिणी सभा के विचारों की चिन्ता नहीं करते रहे।

जनसंघ की स्थापना इस प्रकार हुई थी कि नेहरू जी की नीतियों का विरोध किया जाये। नेहरू जी हिन्दू विचारधारा के विरोधी थे। नेहरू जी द्वारा लिखा साहित्य पढ़ने से पता चलता है कि यह श्रीमान् हिन्दू संस्कृति से सर्वथा अनभिज्ञ कम्युनिस्ट विचारधारा के अनुयायी और भारत में सदा अंग्रेजी आचार, अंग्रेजी भाषा को जन-जन में बनाये रखने के पक्ष में थे।

हम ऊपर बता चुके हैं कि सन् १९६४ में नेहरू जी ने शिक्षा के विषय पर विचार करने के लिए कमीशन नियुक्त की थी, जिसके पन्द्रह सदस्यों में नौ विदेशीय थे।

यह ठीक है कि अपने सहयोगियों की तुलना में श्री जवाहरलाल जी अधिक बार जेल गये थे। परन्तु क्या यह एक प्रधानमंत्री के गुणों में है ? यह एक विदेशीय शासन को परेशान करने का गुण तो हो सकता था, परन्तु भारत जैसे विशाल देश के प्रधानमंत्री के गुणों में नहीं हो सकता।

हमारा यह निश्चित मत है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ठीक दिशा में एक आन्दोलन था। इसके संस्थापक डॉक्टर हैडगवार कट्टर देशभक्त और हिन्दू विचारधारा के कट्टर पोषक थे। उनके संगठन कार्य की दिशा भी ठीक ही थी। संघ में जहां अनुशासन, संयम तथा हिन्दू संस्कृति के प्रति भावना उत्पन्न करने के लिए बौद्धिक शिक्षा का आयोजन था, वहां शरीर को सुदृढ़ और तपस्या युक्त बनाने का भी प्रबन्ध था। परन्तु बौद्धिक विकास के लिए यह आवश्यक था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिमानों की एक परिषद् के अधीन योजना बनती।

हमने बताया है कि एक स्वतन्त्र समाज की स्थापना हिन्दुत्व की विचारधारा ही है। स्वतन्त्रता की परिधि भी हमने बताई है।

संघ का इतिहास देखने से यह पता चलता है कि सन् १९२५ से लेकर सन् १९५० तक स्वयंसेवकों को स्वतः स्वाध्याय और अध्ययन के लिए प्रोत्साहन ही नहीं दिया जाता था। जब संघ का राजनीतिक मंच जनसंघ बना तो बाहर के लोगों से सम्पर्क में समझने-समझाने की आवश्यकता पड़ी। इस समय संघ के अधिकारियों को समझ आया कि कुछ अपना साहित्य भी होना चाहिए और कम-से-कम शिक्षकों को कुछ पढ़ने-लिखने का भी स्वभाव डालना चाहिए। तब से इनके बौद्धिक कार्यों में कुछ उन्नति हुई। परन्तु यह भी तथ्य है कि इनके संचालक हिन्दू संस्कृति और हिन्दुओं के निजी और सामाजिक व्यवहारों से अनभिज्ञ थे। जहां एक ओर संघ में अद्वैतवाद पर बल दिया जाता था तो वहां दूसरी ओर मिथ्या समता का ढोल पीटा जाता था।

यह संस्था अभी तक केवल जीवित ही नहीं, वरन् प्रगति भी कर रही है। अतः अभी इसमें सुधार की आशा बनी है।

हमने बताया है कि हिन्दू सांस्कृतिक मान्यताएं देवी-देवता इत्यादि की पूजा से सर्वथा पृथक् बात है। यदि संघ के संस्थापकों और कार्यकर्ताओं को सुमति प्राप्त हुई तो यह हिन्दुत्व की रक्षा का एक प्रबल साधन हो सकता है।

राजनीति के साथ सम्बन्ध बुरी बात नहीं है। हिन्दू समाज के एक सजीव, सबल अंग को राजनीति में भाग लेते देख हमें प्रसन्नता होती है, परन्तु इसका आधार व्यापक और विस्तृत होना चाहिए। हिंन्दू समाज में अनेकानेक मत-मतान्तर हैं। अपनी-अपनी पूजा-पद्धति रखते हुए भी इनका राजनीति में समान भाग हो सकता है।

साथ ही जो लोग नीति निर्माण करते हैं, वे ही कार्य के उत्तरदायी होने चाहिए। यह नहीं कि नीति निर्माण कोई करे और सफलता न मिले तो दोष दूसरों पर थोपे जायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशम अध्याय

जनता पार्टी

कांग्रेस के नीम कम्युनिस्ट लोग सन् १९७७ में बनी जनता पार्टी को एक हिन्दू दल ही समझते थे, परन्तु ऐसा था नहीं। संसद में जनता पार्टी में नब्बे के लगभग पुराने जनसंघी सदस्य थे। वे सब-के-सब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आश्रय सफल हुए थे और उसमें रह चुके थे। श्री चरणसिंह के दल के लोग भी हिन्दुत्व की ओर झुकते हुए माने जाते थे। वह स्वयं आर्यसमाजी थे। यह ठीक है कि उनमें कुछ मुसलमान भी थे और फिर समाजवादी लोग भी थे, जो अपने आपको प्राचीन भारत से सर्वथा कटा हुआ प्रकट करते थे। परन्तु जनता पार्टी के नेता श्री मोरारजी देसाई होने से, जनता के मन में यह भ्रम हो रहा था कि यह दल पूर्णतया हिन्दू दल नहीं तो हिन्दुत्व की ओर झुकता हुआ है।

जनता पार्टी ने संसद की सदस्यता की शपथ लेते ही महात्मा गांधी जी की समाधि पर जाकर उनके पद् चिह्नों पर चलने की शपथ ली थी। इससे यह भ्रम उत्पन्न होता था कि दल कम-से-कम हिन्दू हितों की रक्षा करेगा।

परन्तु ये संसद सदस्य अधिकांश में विश्लेषणात्मक बुद्धि नहीं रखते थे, जो हिन्दुत्व की विशेषता है। एक तो प्रायः सब-के-सब कांग्रेस की उपज थे। कांग्रेस हिन्दू संस्था कभी भी नहीं रही।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दू से अभिप्राय हिन्दू मत-मतान्तरों की मान्यता नहीं है। हमने हिन्दू संस्कृति की मुख्य मान्यताओं पर पुस्तक के प्राक्कथन में लिखा है। उनका किसी भी मज़हब से सम्बन्ध नहीं है। यदि यह कहा जाये कि वे मान्यताएं वैज्ञानिक तथ्य हैं तो अधिक ठीक होगा। इस कारण कोई आर्यसमाजी था अथवा कोई देवी का भक्त था, कोई किसी महात्मा के पेड़ाओं का प्रसाद बांटता था अथवा कोई किसी साधु-सन्त का उपासक था, यह भी हिन्दुत्व के लक्षण नहीं। इस कारण उस माप-दण्ड से जनता पार्टी हिन्दुत्व की रक्षा करने वाली पार्टी नहीं थी।

इसके विपरीत हमारा विचार है कि इन अनभिज्ञ लोगों के कारण हिन्दुत्व को हानि ही पहुंची थी। जब ये सामान्य-सी बातों पर लड़ पड़े थे और अपने मनों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैल सार्वजनिक रूप में धोने लगे थे तो इन्होंने उन सब मत-मतान्तरों को बदनाम किया था, जिनको वह मानने वाले थे।

एक ओर पुराने जनसंघ के घटक थे। वे न तो स्वयं जनता पार्टी में हो रहे आभ्यन्तरिक संघर्ष को शान्त कर सके, न ही अपनी किसी प्रकार की सम्मति दे सके। जब दल के एक नेता ने किसानों की शक्ति का प्रदर्शन किया तो इसका प्रत्यक्ष अभिप्राय यह था कि जनता पार्टी में किसानों के विरुद्ध भी कुछ लोग थे।

हिन्दुत्व के मुख्य सिद्धान्तों में से एक पर भी जनता पार्टी के शासन काल में प्रगति होती दिखाई नहीं दी।

इन लोगों ने दल बनाते समय कोई सांझी नीति की घोषणा भी नहीं की थी। उस सांझी नीति के अभाव में झगड़ा होना स्वाभाविक ही था। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि जनता पार्टी का प्रत्येक मन्त्री अपने पद की चिन्ता अधिक करता था और सिद्धान्तों की चिन्ता शून्य समान थी।

हमारा विचार था कि यह दल पहले ही दिन संसद में यह प्रस्ताव प्रस्तुत करता कि आपात् स्थिति अनावश्यक, अस्वाभाविक और संविधान के आशय के विपरीत थी, इस कारण उस काल में जो कुछ भी संसद ने पारित किया है, वह रद्द किया जाता है।

बीसियों नये कानून बनाये गये थे। संविधान में भी संशोधन किये गये थे। एक ऐसी संसद जिसने अनावश्यक पूर्ण देश का मुख और कान बन्द कर दिये हों, वह जो कुछ करता रहा है, उस काल में भले ही उचित रहा हो, परन्तु वह सदा के लिए देश पर लादा नहीं जा सकता था। वह संसद, जिसमें से सैकड़ों पकड़ कर बिना दोष सिद्ध किये बन्दी बनाकर संसद की कार्यवाई में भाग लेने से वंचित किये गये हों, वह संसद कुछ भी अपने काल में ठीक करती रही है, परन्तु आपात् स्थिति के समाप्त होते ही वह एक ही लकीर से रद्द होनी चाहिए थी।

ऐसा कुछ नहीं किया गया। निःसन्देह वह दल शासन करने योग्य नहीं था। हम समझते हैं कि व्यर्थ के मनोद्गारों में फंसकर जनता पार्टी को विजयी किया गया था। यह प्रजातांत्रिक पद्धति के लिए अत्यन्त लज्जा की बात हो सकती है कि जनता पार्टी जैसे लोग भारतवर्ष जैसे प्राचीन सभ्यता वाले देश पर शासन करने के लिए निर्वाचित हो सके थे।

इससे हिन्दुत्व के पक्ष को भारी हानि पहुंची थी। देश में हिन्दुओं की संख्या अधिक है और पूर्ण देश सही सिद्धान्तों पर, सही दिमाग के लोगों का निर्वाचन नहीं कर सका।

हिन्दुत्व की यात्रा को जनता पार्टी ने पूरा आघात लगाया था। इस दल के परस्पर झगड़ पड़ने से यही सिद्ध होता है कि सामान्य रूप से भारत देश और विशेष रूप में हिन्दू समाज अभी तक समझा ही नहीं कि मानव कल्याण के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और देश को उज्ज्वल करने के लिए क्या आवश्यक है।

जब तक जनता पार्टी का शासन रहा, तब तक पार्टी के वे सब अंग, जो पूर्व में जनसंघ से सम्बन्धित नहीं थे, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की निन्दा करते थे और जनसंघ के सब घटक जो जनता पार्टी में थे, वे मौन बैठे रहते थे।

जनता पार्टी पर आरोप लगाने वाला अंश यह कह रहा था कि संघ जनता पार्टी को निगलकर उसपर अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। ऐसा आरोप लगाने वालों में श्री चन्द्रशेखर, श्री राजनारायण, श्री चरणसिंह सबसे आगे थे। इसका उत्तर श्री वाजपेयी इत्यादि मौन रहकर दे रहे थे। राज्य सभा में एक पत्र श्री वाजपेयी का लिखा उपस्थित किया गया कि जनता पार्टी पर आर० एस० एस० का पूर्ण अधिकार हो जायेगा। पार्टी में सदस्य भर्ती किये जा रहे थे। स्वाभाविक रूप में आर० एस० एस० के स्वयंसेवकों ने प्राइमरी मैम्बर बनाने में विशेष यत्न किया था। श्री राजनारायण का कहना था कि जनता में से बनाये दल के सदस्यों में संघ के अधिक हैं। इससे संघ का प्रभाव बढ़ रहा है। इस कारण इन सबको बाहर निकाल देना चाहिए। यह इस पार्टी के नेता की महान् मूर्खतापूर्ण बात थी।

वस्तुस्थिति यह थी कि देश के कल्याण पर चिन्तन और कार्य करने वाली जनता में इन राजनारायण इत्यादि के समर्थक बहुत कम थे। वह न तो उनके कहने पर जनता पार्टी के सदस्य बने, न किसी दूसरे को बनाने की सामर्थ्य रखते थे। अपने समर्थक को केवल हो-हल्ला करने वाले देख उनको भय लग गया था कि उनका भविष्य धूमिल है।

यह जनता पार्टी की असफलता का प्रथम लक्षण था। कांग्रेस का आधार गांधी जी ने 'रघुपति राघव राजा राम' कहते-कहते बनाया था। श्री जवाहरलाल ने धनियों को निर्धन बना उनकी सम्पत्ति निर्धनों में बांट देने का प्रलोभन देकर अपना जनता में आधार बनाया था। जनता पार्टी का आधार केवल इन्दिरा जी को हटाना था, परन्तु क्यों? इसलिए कि उसने आपात् स्थिति लगाई थी। परन्तु आपात् स्थिति के अनौचित्य पर जांच तो करवाई नहीं। न ही इस अनुचित सरकार ने जो पारित किया था, उसे रद्द किया। सबसे बड़ी बात थी कि उस काल में संविधान में स्थाई परिवर्तन किये गये। उनको भी रद्द नहीं किया गया। तब भला इन्दिरा जी के हटाने में क्या औचित्य था? कम-से-कम जनता पार्टी के अमल से कुछ भी उचित नहीं हुआ था।

जो दल में संघ के प्रवक्ता माने जाते थे, उनको उत्तर देना चाहिए था। दो बातें पृथक्-पृथक् हैं। एक तो यह कि जनसम्पर्क का कार्य दल के दूसरे लोग भी कर सकते हैं। परन्तु यह तब ही हो सकता, जब श्री वाजपेयी इत्यादि यह स्वीकार करते कि वे आर० एस० एस० के प्रतिनिधि हैं। यह नाना देशमुख का काम था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कहते कि वह हिन्दू हैं और हिन्दुओं को जनता पार्टी के सम्पर्क में ला रहे हैं। लुक-छुप कर कार्य करने के स्थान प्रत्यक्ष रूप में करते तो यह श्री राजनारायण इत्यादि के नेतृत्व का भण्डा फोड़ा जा सकता था। ऐसा करने के स्थान गुप्त ढंग से कार्य करना एक अशुद्ध नीति थी।

प्रत्यक्ष रूप में श्री राजनारायण के आरोप का सार्वजनिक रूप में खण्डन किया जाता। श्री जवाहरलाल और अन्य कांग्रेसियों का आरोप कि संघ एक फासिस्ट संस्था है, खण्डन किया जाता। परन्तु श्री वाजपेयी, जो जवाहरलाल के भक्त थे, श्री जवाहरलाल को निराधार झूठी बात करने वाला नहीं कह सके।

संघ की ओर से भी इस बात का स्पष्टीकरण होना चाहिए था कि संघ के स्वयं सेवक जनता पार्टी का काम कर रहे हैं। यह स्वीकारोक्ति हो सकती थी और जनता को बताया जाता कि राजनारायण नेता तो है, परन्तु उनका जनता से सम्पर्क केवल वोट लेने का है, विचार समानता का नहीं। तब बात स्पष्ट हो जाती।

श्री वाजपेयी जी ने राज्यसभा में उपस्थित पत्र को जाली तो कहा, परन्तु राजनारायण इत्यादि ने जो इस पत्र के आधार पर जनता पार्टी में फूट डलवाना चाहते थे, पत्र की जांच नहीं करवाई।

परिणामस्वरूप परस्पर गालियां देते हुए जनता पार्टी भंग हो गयी।

हमारा तो यह मत है कि जनता पार्टी के इस व्यवहार से हिन्दुत्व की यात्रा में वाधा ही पड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकादश अध्याय

वर्तमान स्थिति

वर्तमान काल में जहां तक हिन्दुत्व का सम्बन्ध है, वही स्थिति है जो श्री जवाहरलाल नेहरू के काल में थी। प्रत्यक्ष रूप में हिन्दुत्व का विरोध नहीं है, परन्तु हिन्दुओं के संगठन में और उनका देश की संस्कृति को ठीक दिशा देने में बाधा पड़ रही है।

संक्षेप में, यदि देश का चित्र वर्णन करें तो यहां यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि—

(१) शराब पीने का व्यापक प्रचार है।

(२) गाय के घी-दूध का नितान्त अभाव है।

(३) परमात्मा, आत्मा, कर्मफल और यथायोग्य व्यवहार मौखिक स्वीकारोक्ति तो है, परन्तु व्यवस्था में इसका कहीं दर्शन नहीं। चोरियां, डाके, हत्याएं, स्त्रियों का अपहरण, रिश्वत, परिवार पोषण देश में व्यापक रूप धारण कर चुका है।

इस दुर्व्यवस्था में वर्तमान शासन का हाथ इतना नहीं, जितना कांग्रेस की व्यापक नीति जो सन् १८८५ से ही चली आ रही है, का यह परिणाम है। यह ठीक है कि विकृति की गति उन्नीसवीं शताब्दी में और अंग्रेजी शासन काल में इतनी अधिक नहीं थी, जितनी अब है। परन्तु यह तो सब गतिशील बातों में होता है। आरम्भ में गति धीमी होती है और धीरे-धीरे काल व्यतीत होता जाता है तो गति तीव्र होती जाती है। इस कारण स्वाभाविक रूप में ही इस दुर्व्यवस्था की गति अब तीव्र है।

इसका मुख्य कारण यही है कि हिन्दू श्रद्धा के पीछे पागल हो जाता है। इसमें बुद्धि का प्रयोग बहुत कम हो गया है। उन बातों पर श्रद्धा, जिनको बुद्धि न माने, पतन का द्योतक ही होता है।

चोटी के हिन्दू से लेकर एक सामान्य हिन्दू तक अबुद्ध सिद्धान्तों पर श्रद्धा-भक्ति रखने का ही यह परिणाम है कि वे मुसलमान जो सन् १९४६ में पाकिस्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने के लिए मत दे चुके दे, स्वराज्य मिलने पर मौन हो गये थे और महात्मा गांधी जी उनको गले लगाकर यह कहा करते थे कि वे देश में शान्तिपूर्वक रहेंगे और उनके प्रति अन्धश्रद्धावान् हिन्दू जनता उनको सहन करने लगी थी। यही मुसलमान अब पुनः अपने आक्रान्त व्यवहार का प्रदर्शन कर रहे हैं। एक बात पिछले वर्ष विशेष हुई है कि एक हिन्दू-मुसलमान दंगे में एक कमीशन ने एक हिन्दू संस्था के व्यक्ति को दोषी ठहराया तो एक ओर उस संस्था ने इस आरोप से इनकार तो किया, परन्तु इस इनकार के साथ ही, जिस हिन्दू पर यह आरोप है कि उसने बलवा कराया है, उसे भारतीय जनता पार्टी से पृथक् कर दिया है। अर्थात् पार्टी ने कमीशन की रिपोर्ट को ठीक मान लिया है।

सन् १९१९ में पंजाब में मार्शल-ला लगा था और उसमें जनता पर अत्यन्त अत्याचार किया गया था। सरकारी कमीशन ने जब जांच में गड़बड़ करनी चाही तो कांग्रेस ने अपनी एक पृथक् जांच कमीशन बैठा दी और उसमें सरकारी अफसरों के व्यवहार का रहस्योद्घाटन कर दिया था।

कुछ वैसी ही बात भारतीय जनता पार्टी की ओर से होनी चाहिए थी। परन्तु यह तब ही हो सकता था, जब भारतीय जनता पार्टी तथा संघ एक होना स्वीकार करते। यह सब जानते हैं कि भारतीय जनता पार्टी का जन आधार आर० एस० एस० है। इसी दल ने घोषणा की है कि जमशेदपुर में दंगे का दोषी जिस व्यक्ति को ठहराया गया था, उसे दल से पदच्युत कर दिया गया है। यह अबुद्ध व्यवहार है।

अतः हमारा यह कहना है कि हिन्दुत्व की यात्रा ठीक मार्ग पर नहीं चल रही। इसका राजनीतिक आधार तो किसी के भी हाथ में नहीं है। जो राजनीति की गतिविधि चल रही है, वह बुद्धि से विचारित नहीं, वरन् न्यूनतम बाधा (way of least resistance) का मार्ग है और ऐसा मार्ग पतन का मार्ग होता है। ऊपर उठने में तो प्रयत्न करना पड़ता है।

जहां तक हिन्दूत्व के बौद्धिक विकास का सम्बन्ध है, उसे अहिन्दू राज्य ने अपने हाथ में ले रखा है। जो कुछ हिन्दू समाज के साथ मुसलमानी काल में दुर्व्यवहार हुआ था, उसका किसी एक बात में भी तो निराकरण अभी तक नहीं हुआ।

इसमें दोष हिन्दू समाज का है। यह बहुसंख्यक समाज अपने अस्तित्व को न समझ संस्कृति रूपी पेड़ के पत्तों को ही पानी दे रहा है।

इस अवस्था में क्या किया जाये? हम समझते हैं कि हिन्दू संस्थाओं को, जिसमें सनातन धर्म सभा, आर्यसमाज, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा अन्य छोटी-मोटी संस्थाओं के भले लोगों को ही मिलकर एक सांझा कार्यक्रम बनाना चाहिए। वह कार्यक्रम दोनों पक्ष में होना चाहिए। संस्कृति की दिशा में भी और राजनीति की दिशा में भी। बिना राजनीति में एक दिशा स्वीकार किये जाति राष्ट्र पद पाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अधिकारी नहीं होगी।

जाति के जिस अंश का देश में बहुमत हो, तो राज्य उसका ही होना चाहिए। जाति का आधार रोटी, कपड़ा, मकान मात्र नहीं हो सकता। उसकी मौलिक मान्यताएं हैं जो उसे एक रखने में सबल होती हैं। उनके अनुसार व्यवहार होना चाहिए।

रोटी, कपड़ा, मकान तो शारीरिक आवश्यकताएं हैं। ये जीवन का एक अति न्यून अंश हैं। शरीर पालन इसी कारण होता है कि उसमें जीव और बुद्धि रह सकें। जीव और बुद्धि को निकाल दें तो शरीर का मूल्य एक शव के समान हो जाता है।

इसी प्रकार वे मान्यताएं, जो केवल शरीर के साथ सम्बन्ध रखती हैं, जाति की बुद्धि और आत्मा को नहीं पहुंच सकतीं।

यही हमने इस पुस्तक के उपोद्घात में स्पष्ट किया है। जाति की संस्कृति जो शरीर, इन्द्रियों और मन से ऊपर है, को लक्ष्य बनाओ। यह मन्दिर, गुरुद्वारे, तीर्थ-स्थान और दर्शनीय वस्तुएं गौण हैं। ये जाति का केन्द्रबिन्दु नहीं। इनके आधार में जो विचार हैं, वे ही मुख्य हैं और वे बुद्धि का विषय हैं। इस कारण हम चाहते हैं कि जाति को निम्न केन्द्र बिन्दुओं पर संगठित करना चाहिए—

(१) परमात्मा
(२) जीवात्मा
(३) कर्मफल
(४) पुनर्जन्म
(५) धर्म के दस नियम
(६) आत्मना प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत
(७) बुद्धि का पथ-प्रदर्शन
(८) सामाजिक व्यवहार में समाज के अधीन; परन्तु व्यक्तिगत व्यवहार में स्वतन्त्रता।
(९) परित्राणाय साधुनाम विनाशाय च दुष्कृताम्
(१०) इन सबके लिए संयम और तपस्या।

यही कल्याण का मार्ग है और कल्याण में ही हिन्दुत्व है।

इनके अतिरिक्त वर्तमान शिक्षा को उचित दिशा देने के लिए देश के इतिहास पर पुनरावलोकन होना आवश्यक है। इस देश के इतिहास को ईसाई मनोवृत्ति के लेखकों ने बहुत बिगाड़ा है और अब वर्तमान राज्य अपनी मुस्लिम मनोवृत्ति के कारण इसमें भारी बिगाड़ करने पर तुला हुआ है। उस संगठन को जिसकी कल्पना हमने ऊपर बताई है, पूर्ण करने के लिए शिक्षा के इस अंग (इतिहास) पर कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। इसकी सामग्री तो अत्यधिक मात्रा में मिलती है, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि के फेर से प्रयास उन्हीं मार्ग पर चल रहा है जो अंग्रेजी शासकों ने हमारे सम्मुख रखा था।

इतिहास के साथ राज्य का पुरातत्त्व विभाग का कार्य भी हिन्दू संगठन को अपने हाथ में लेना होगा और यत्न करना होगा कि सब ऐतिहासिक और शैक्षणिक स्थानों अथवा अवशेषों पर अधिकार प्राप्त कर लिया जाये और उनको भारत के वास्तविक इतिहास से सम्बन्धित किया जाये।

विस्मय की बात यह है कि उन ऐतिहासिक स्थानों को, जिनको अंग्रेजी काल ने भी मज़हब से पृथक् रखा हुआ था, वर्तमान राज्य ने मज़हबी मान लिया है। अन्यथा, आगरे के ताज और दिल्ली के कुतुब को जुम्मे के दिन खुला घोषित करने में कोई कारण नहीं। इन दिनों में भी अन्य दिनों की भांति प्रतिबन्ध क्यों न हो ?

इनके साथ कुछ प्राचीन मन्दिर, जिन पर इस्लामी राज्य के दिनों में मुसलमानों ने अनधिकारयुक्त अधिकार कर लिया था, उन पर इस स्वराज्य काल में भी अभी तक प्रतिबन्ध है।

हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हिन्दू मतों के अतिरिक्त दूसरे मत यहां अपना प्रचार न करें अथवा न कर सकें। हिन्दुत्व की यह मांग कभी नहीं रही। न रहनी चाहिए। हम मज़हबों को, भारतीय क्या और अभारतीय क्या, सब को गौण मानते हैं। वे व्यक्ति के अपने विचार की बात है। किसी भी मज़हब को राजकीय संरक्षण नहीं मिलना चाहिए।

परन्तु हिन्दुत्व मज़हब नहीं है। यह वैज्ञानिक मान्यता और व्यवहार है।

दूसरी कामना है कि परमात्मा हिन्दू समाज को सद्बुद्धि और स्व-रक्षण का मार्ग दिखा सके। यह ही भारत की, भूमण्डल की तथा मानवता की रक्षा का मार्ग है।

081
168025
Central Library
168025
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R 089.9143

आगत संख्या 168025

वर्ग संख्या GUR - H

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे द्वारा प्रकाशित कुछ प्रमुख रचनाएं

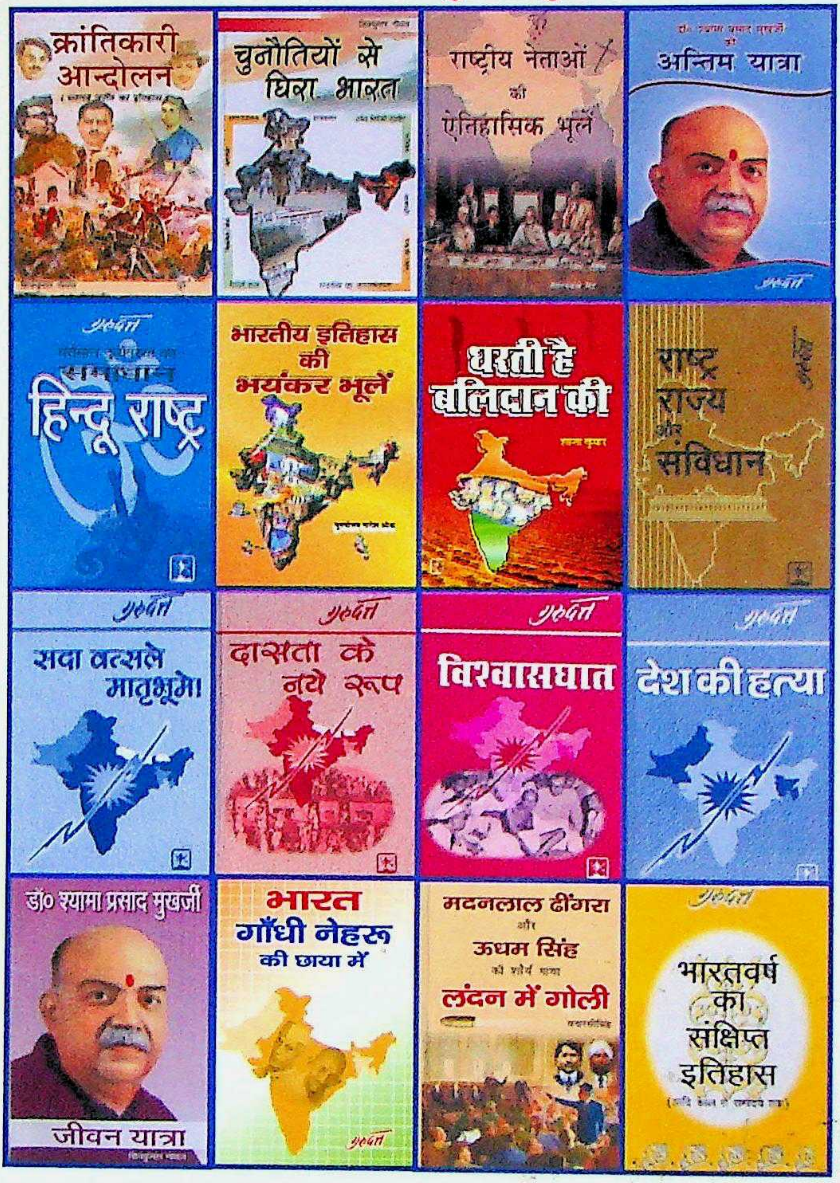

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-05. फोन : 9213527666, 7065618655
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com, hindisahityasadan@gmail.com
www.hindisahityasadan.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar